RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र./261/भोपाल/2015-17 प्रकाशन तिथिः 22 मई 2015

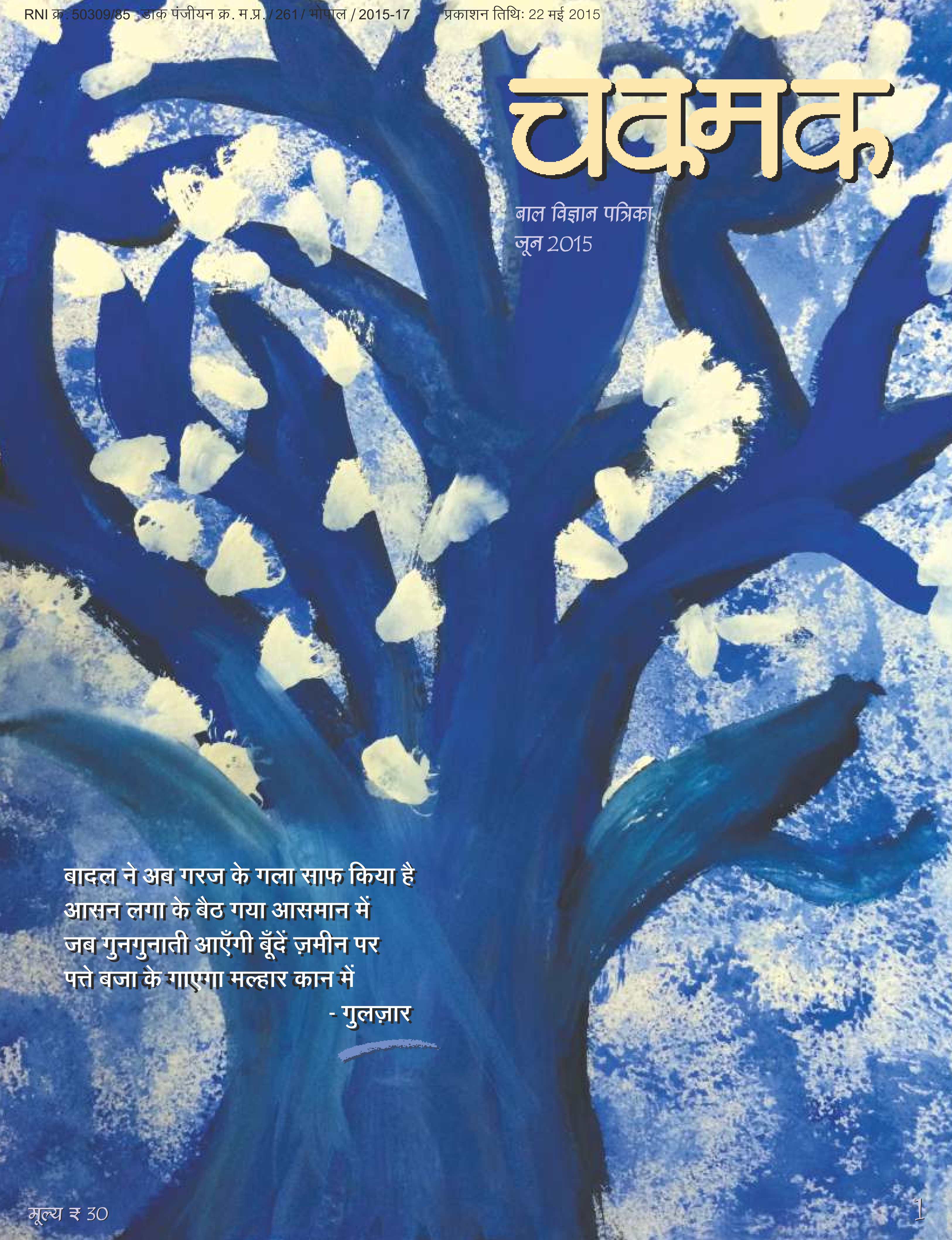

चकमक

बाल विज्ञान पत्रिका
जून 2015

बादल ने अब गरज के गला साफ किया है
आसन लगा के बैठ गया आसमान में
जब गुनगुनाती आएँगी बूँदें ज़मीन पर
पत्ते बजा के गाएगा मल्हार कान में

- गुलज़ार

मूल्य ₹ 30

नोक-झोंक

श्याम सुशील

दीदी! मुझे गुस्सा मत दिला!
क्या कर लेगा?
मैं तुझे चुहिया बना दूँगा!
मैं तेरी किताबें कुतर डालूँगी!
मैं तुझे मधुमक्खी बना दूँगा!
मैं तेरे गाल को गोलगप्पा बना दूँगी!
मैं तुझे आसमान में फेंक दूँगा!
मैं आसमान से तेरे ही ऊपर गिरूँगी!
मैं घर में घुस जाऊँगा!
डरपोक कहीं का!

चित्रः कनक

इस अंक में

2 नोक-झोंक/ श्याम सुशील
4 जल/ अरुण कमल
6 सब चलता है.../ रुद्राशिस चक्रवर्ती
8 भूला गाम बले/ एकता चन्द्रा
10 मुगैम्बो खुश हुआ... / वरुण ग्रोवर
12 हिप-हिप हुर्रे!/ संजीव
14 एक था हाजी एक था नाजी/ स्वयं प्रकाश
16 हम एक जगह बैठे नहीं हैं... / रमा चारी
18 छतें/ रुस्तम सिंह
19 मेरा पन्ना
20 बादल क्या है!/ राजेश जोशी
21 बोली रंगोली
24,25 मेरा पन्ना
26 ग णि त की नौ टं कि याँ/ ज्ञान चतुर्वेदी
29 मगरमच्छ/ जसबीर भुल्लर
33 माथापच्ची
34 दोस्त/ शशिकिरण
38 बैल की अकल/ सुकुमार राय
40 गौरैया/ आमोद कारखानिस
43 तू छिपा है कहाँ.../ विशाल मोदी
44 चित्रपहेली/ कविता तिवारी

बाल विज्ञान पत्रिका

चकमक

अंक 345 जून 2015

एक इराकी फोटोग्राफर ने यह तसवीर ली है। सो रही लड़की एक अनाथालय में रहती है। उसने कभी अपनी माँ को नहीं देखा... उस दिन शायद वह अपनी माँ के साथ सोना चाहती थी। उसने चॉक से माँ बनाई और उसके साथ सो गई।

(फेसबुक की एक पोस्ट से साभार)

आवरण चित्र
अनन्या अग्रवाल, सातवीं, सनसिटी स्कूल, गुड़गाँव

हाशिए के चित्र अरविन्द गुप्ता की पुस्तक आहा एक्टिविटीज़ से

सम्पादन
सुशील शुक्ल
शशि सबलोक

सहायक सम्पादक
कविता तिवारी
मिताली अहीर

विज्ञान सलाहकार
सुशील जोशी

डिज़ाइन
दिलीप चिंचालकर

वितरण
झनकराम साहू

सहयोग
वरुण ग्रोवर
प्रभात
मिहिर
कमलेश यादव

विप्रो एप्लाइंग थॉट इन स्कूल्स के वित्तीय सहयोग से विकसित

एक प्रति :	30.00	-	व्यक्तिगत
	50.00	-	संस्थागत
वार्षिक :	300.00	-	व्यक्तिगत
	500.00	-	संस्थागत
तीन साल :	800.00	-	व्यक्तिगत
	1350.00	-	संस्थागत
आजीवन :	4000.00	-	व्यक्तिगत
	6000.00	-	संस्थागत

सभी डाक खर्च हम देंगे। चन्दा (एकलव्य के नाम से बने) मनीऑर्डर/चैक से भेज सकते हैं। भोपाल के बाहर के चैक में 80.00 रुपए अतिरिक्त जोड़ें।

एकलव्य ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल, म.प्र. 462 016, फोन: (0755) 4252927, 2550976, 2671017
फैक्स: (0755) 2551108, e mail - chakmak@eklavya.in, e mail - circulation@eklavya.in, www.chakmak.eklavya.in, www.eklavya.in

जल

अरुण कमल

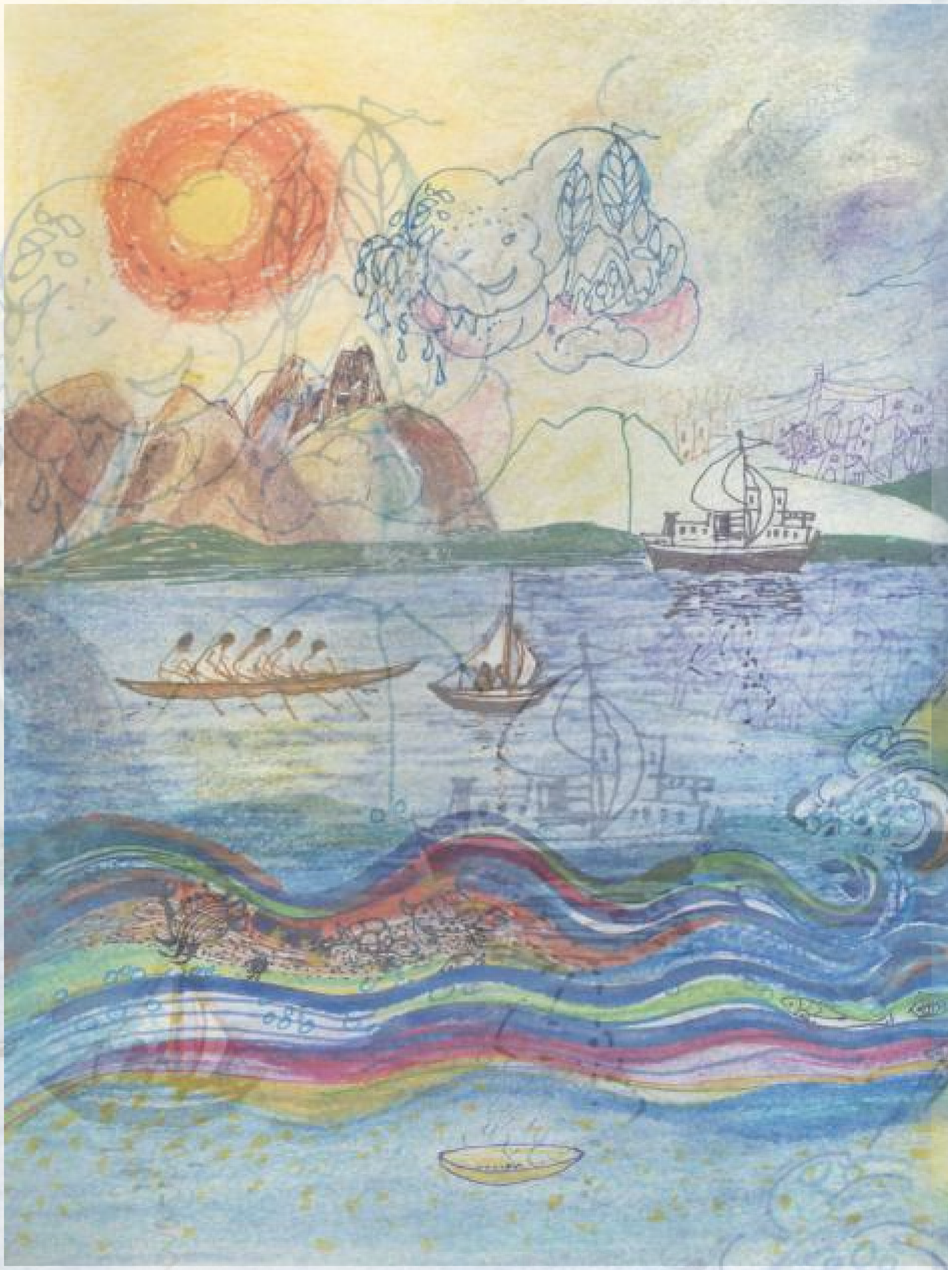

चित्रः शोभा घारे

सुबह-सुबह मैंने अपने कमरे में मनीप्लांट की लतर को देखा तो हैरत में पड़ गया। लतर के अन्तिम पत्ते की नोक पर जल की एक बूँद टँगी थी। जड़ों से होते हुए जल ऊपर तक आया, हवा में ठहर गया। यही तो खूबी है जल की। वह चलता रहता है। वह कभी छिपकर नहीं रहता। और जहाँ कहीं जीवन है वहाँ जल है। ऐसा कौन-सा जीव है जिसके शरीर में जल न हो? रक्त भी तो जल है। आदमी खुद एक चलता-फिरता तालाब है जिसके भीतर लगातार लाल जल दौड़ रहा है। मैंने सबसे पूछा, "ऐसा कौन सा प्राणी है जिसकी देह में पानी नहीं?" मेरी दादी ने कहा, "चावल में रहनेवाला छोटा-सा कीट – कीरी।" पता नहीं। लेकिन जल तो चावल के दाने में भी है। जल का सबसे बड़ा घर है समुद्र। समुद्र में जल ऐसे उछलता-कूदता है जैसे हम अपने खेल के मैदान में। दूर-दूर तक जल। नमकीन। नदियों में दौड़ता हुआ जल। पोखर में रखा हुआ जल। कुएँ की पेंदी पर चमकता-तड़पता जल। धरती के भीतर से फूटकर बड़ी-छोटी नलियों से गुज़रता फिर मेरे गिलास में उतरा हुआ जल। शीशे के गिलास में जल जैसे कोई तारा चमकता हुआ। ऐसा क्यों है कि प्रकाश जल के इतना करीब है? जल में इतनी चमक क्यों हैं? अँधेरे में भी चमकती है नदी। और समुद्र में इतने तरह के प्रकाश, इतने रंग। अँधेरे में बैलों की जलदार आँखें चमकती हैं। हमेशा जल के भाई मेघ के साथ बिजली भी चमकती है। और हर जीव जल की तरफ खिंचा आता है। जल हमें पुकारता है। जल को देखते ही माँ की याद आती है। जल एक चुम्बक है। हम सब लोहा।

इतना पानी आया कहाँ से! अचानक बादल घुमड़ते हैं और आसमान से पानी गिरने लगता है। पहली बूँदें धूल में गोलियाँ बनाती हैं। फिर लगातार बारिश। बौछारें। पृथ्वी सारा जल सोख लेती है। नदियाँ ऊपर तक भर जाती हैं। और फिर सारा जल समुद्र के खाते में जमा हो जाता है। मैंने पानी को इतनी-इतनी तरह से देखा है। पहाड़ों पर गिरती धारा और उसके रास्ते धूप में चमकते। चट्टानों को

तोड़ता रास्ता बनाता पानी। जल से ज़्यादा कोमल और निर्बल और क्या है? चट्टानों से ज़्यादा ताकतवर और कौन है? लेकिन जीत तो हमेशा निर्बल जल की होती है। जल में इतनी ताकत कहाँ से आती है? चलने से। गति से। उसी से बिजली भी बनती है। पानी से ज़्यादा रहस्यमय कुछ भी नहीं। जो इतना निर्बल है उसमें इतनी ताकत है! पानी में आग है। पानी जैसा चाहे रूप बदल लेता है। पानी जैसा चाहे रंग बदल सकता है। पानी बिलकुल बहरूपिया है। चाहे तो बर्फ, चाहे तो भाप बन सकता है। बर्फ को छूना कितना अच्छा लगता है। मैंने पहली बार बर्फ की सिल्ली छुई थी। उसमें से भाप उठ रही थी। मेरे स्कूल के बाहर एक बर्फवाला बर्फ रगड़कर प्याले में देता था – लाल, नारंगी, हरा शीरा उस उजली बर्फ में मिलाता था। सुनते हैं हिमालय में ऊपर केवल बर्फ ही बर्फ है सफेद। मैं उसे सात रंगों के शीरे से रंग दूँगा। तब हर नदी में अलग-अलग रंग का पानी होगा। मीठा-मीठा। तब समुद्र का पानी भी मीठा हो जाएगा।

बरसात में बुलबुलों का बनना-फूटना मुझे बहुत अच्छा लगता है। एक दिन मैं पानी में हवा भर के बहुत बड़ा बुलबुला बनाऊँगा और उसमें बैठ कर खूब घूमूँगा। जैसे धरती पर सड़क होती है वैसे ही जल पर भी, वैसे ही हवा में भी। जल की सड़क पर नाव चलती है। जहाज़ चलते हैं। मेरा बुलबुला धरती, नदी, आकाश हर जगह चलेगा। माँ कहती है हम सब लोग एक-दूसरे को प्यार इसलिए करते हैं कि हम सब के शरीर में जल है। सबकी देह में एक ही जल है। एक देह का जल दूसरी देह के जल को पुकारता है। तब दूसरी देह का जल भी हिलने लगता है। इसलिए प्यासे को पानी पिलाना चाहिए। गर्मी में मेरी नानी के गाँव के कुएँ सूख जाते हैं। नदी का पानी सूख जाता है। मेरी बहनें दूर के गाँव से पानी लाती हैं। तब मैं भी वहाँ एक रहट पर जाकर नहाता हूँ। रहट की बालटियाँ एक-एक कर पानी भरती-गिराती चलती रहती हैं। लेकिन पानी सूखता क्यों है? एक बार मैंने धूप में एक तश्तरी में पानी रखा था। शाम को देखा, वहाँ से पानी गायब था। पानी उड़ गया था। नानी के गाँव में खेत सूख गए थे। धरती फट-फट गई थी। सब कह रहे थे सूखा पड़ेगा। लेकिन हम सब की देह में पानी तो है। यह पानी धरती के अन्दर के पानी को पुकारेगा। जैसे मनीप्लांट के इस छोटे से पौधे की पत्ती की नोक पर दूर जड़ों से आकर यह जल झाँक रहा है वैसे ही धरती की जड़ों से, आकाश की जटाओं और हवा के जालों से जल फूटेगा। पानी जो मेरे चुल्लू में हिल रहा है, मैं चुल्लू भर पानी में जी लूँगा।

सब चलता है...

पर चलाता कौन है?!

कलकत्ता से 25 किलोमीटर दूर एक सोता-सा शहर है – श्रीरामपुर। मेरी मौसी यहाँ रहती हैं। एक समय था जब हर चार-पाँच महीनों में माँ के साथ मैं वहाँ जाता ही था। तब मैं यही कोई आठ-नौ बरस का रहा हूँगा। रेल से श्रीरामपुर पहुँचने में 40-45 मिनट लगते हैं (तब भी इतने ही लगते थे)। मेरे लिए यह सफर इतना रोमांचक, सुखद, और आश्चर्यों से भरा होता कि आज दो दशक बाद भी उस खुशी, रोमांच को मैं महसूस कर पाता हूँ। आज भी लोहे की पटरी पर दौड़ते लोहे के पहियों की लयबद्ध ताल सुन पाता हूँ। और उस लय से जुगलबन्दी करते डिब्बों के हिलने को महसूस कर पाता हूँ। रेल में मैं खिड़की के पास बैठता था। हमारी रेल के साथ-साथ और भी पटरियाँ दौड़ रही होती थीं। मैं दौड़ती खाली पटरियों को देखता। दौड़ते-दौड़ते कभी वो पास-पास आती जातीं और झटके से मिल जातीं। और कभी दो पटरियों के बीच अचानक और पटरियाँ उग आतीं और फिर दूर दूर होते-होते वो चार हो जातीं। मुझे यह सब जादू जैसा लगता।

...एक जादू मौसी के घर नानी के हाथ से बने खाने में होता – जो मेरा इन्तज़ार कर रहा होता।

अब बड़े होने के बाद रेल वैसा जादू तो नहीं जगाती पर हैरान तो कर ही जाती है। रात में सफर करते समय अचानक नींद टूट जाना अकसर होता है। आसपास के लोग नींद में गहरे डूबे हुए होते हैं। मैं उन्हें देखता हूँ। उनके सुकून को देखता हूँ। खुश होता हूँ। पर कभी-कभी उन्हें देख उसी बचपन में चला जाता हूँ और सोचता हूँ कि अरे, जब सब लोग इतनी गहरी नींद में हैं तो यह रेल इतनी तेज़ चल कैसी रही है? फिर इन्हीं जादुई पलों में उस अनजाने, अनदेखे, अनसुने बन्दे के बारे में सोचता हूँ जो गाड़ी के आगे लगे उस विशाल, भयावह इंजिन की एकदम सामनेवाली सीट पर बैठा होगा। सोचता हूँ क्या गज़ब बन्दा है ये – इसे रात में सोने का मन नहीं करता! उस पल उसकी यह महानता इस दुनिया के परे की चीज़ लगती।

चित्रः सुनीता

रुद्राशिस चक्रवर्ती

एक दिन मैंने माँ से यह बात कही। वो बोलीं, “ये अनजाने, अदृश्य लोग जैसे ही गाड़ी का इंजिन चालू करते होंगे सोचो उन पर कितनी बड़ी ज़िम्मेदारी आन पड़ती होगी! तब हज़ारों लोगों की जान इनके हाथों में होती है। इतनी ज़िम्मेदारी भरा काम इन्हें रोज़-रोज़ करना पड़ता है। और अपने ठिकाने पर पहुँचकर कोई इन्हें शुक्रिया तक नहीं कहता!” माँ की बात मेरे भीतर घर कर गई।

कई साल बाद सन् 2013 में मैं दिवाली की छुट्टियाँ मनाने अपने घर कोलकाता जा रहा था। हावड़ा स्टेशन पर उतरते ही अचानक मुझे कुछ याद आया और मैं बाहर जानेवाले रास्ते की बजाय प्लेटफॉर्म पर दूर तक चलता गया। जहाँ प्लेटफॉर्म खत्म हो रहा था वहाँ गाड़ी का इंजिन था। वो वहाँ खड़े थे। नीली वर्दी में। उम्र होगी कोई 44-45 की। आँखों पर चश्मा था। साधारण नाक-नक्श। इतने साधारण कि भीड़ में दिख जाते तो उन पर निगाह शायद ही टिकती। पर हज़ारों लोगों को हज़ारों किलोमीटर दूर अपनी मंज़िल तक सुरक्षित पहुँचाने का ज़िम्मा ये रोज़-रोज़ उठाते हैं – चुपचाप। मैं उन के पास गया और उन्हें शुक्रिया कहा। माँ की कही बात भी उन तक पहुँचाई। उनके हाव-भाव से साफ था कि वे ऐसी शुक्रगुज़ारी के आदी न थे। पर मेरी बात सुनकर वे बहुत खुश हुए। फिर आसपास से एकदम बेपरवाह यात्रियों को तेज़ी से आता-जाता देखकर बोले कि अब तो वो भी दिवाली अपने परिवार के साथ मनाने जा पाएँगे। मेरे ख्याल से वो इस बात को लेकर भी निश्चिन्त और खुश थे कि कम से कम इस एक सफर के लिए उन्हें गाड़ी नहीं चलानी पड़ेगी!

सोचता हूँ कि क्या कभी ऐसी किसी यात्रा के अन्त में उन्होंने अपनी रेल के ड्राइवर का शुक्रिया अदा किया होगा?

पर फिर सोचता हूँ कि शुक्रिया पाने के लिए तो निश्चित ही उन्होंने यह काम नहीं चुना होगा। इसलिए उन्हें इससे कोई फर्क भी नहीं पड़ता होगा कि कोई उन्हें शुक्रिया कहे, न कहे।

वैसे, ऐसे कामों में लगे लोगों का आभार मानने में हम जितने तंगदिल हैं, उसे देखते हुए तो उनका यह सोचना गलत भी नहीं लगता!

भूला गाम बले

एकता चन्दा

काटौड-झाड़ौल की लोक-कथा

बहुत पहले अँग्रेज़ों के शासन के समय की बात है। "भूला की आमली" नाम के एक आदिवासी गाँव में एक डोकरा-डोकरी (बूढ़ा-बुढ़िया) रहते थे। उस समय के अँग्रेज़ी नियम-कायदों के हिसाब से सबको अपनी फसल का एक मोटा हिस्सा अँग्रेज़ों को लगान के रूप में देना पड़ता था। उन्होंने बड़ी मेहनत से तिल की खेती की थी। सालभर की कमरतोड़ मेहनत के बाद जब फसल खेतों में लहलहाने लगी तो अँग्रेज़ सरकार के नुमाइन्दे लगान वसूलने आ गए। उन्होंने अपने सामने पूरी फसल कटवाई और अनाज के ढेर लगवा लिए। ऐसा करते-करते शाम ढल गई इसलिए उन्होंने ढेरों के इर्द-गिर्द चूने से निशान लगवाए और सुबह लौटने का कहकर वहाँ से चले गए। इधर डोकरा-डोकरी अपनी साल भर की मेहनत में से मुट्ठी भर हिस्सा पाकर खुद को ठगा-सा महसूस कर रहे थे। डोकरी भारी मन से ढेरों को देखते हुए डोकरे से बोली, "सारा साल हमने दिन-रात मेहनत की। मुँह अँधेरे उठकर खेत पर निकलते थे। फिर चिलचिलाती धूप, बरसात सब सहन करते थे। आज जब फसल पककर तैयार हुई तो उसका इतना बड़ा हिस्सा ये लोग ले जा रहे हैं। हमारे पास तो इतना भी नहीं बचा कि महीना भर चैन से खा सकें।" डोकरे ने कहा, "बात तो तेरी ठीक है। जी तो मेरा भी बड़ा दुखी है कि अपनी मेहनत हाथ से निकल रही है।" डोकरी ने ढेर को फिर देखा और बोली, "अगर हम इस ढेर में से थोड़ी-सी तिल्ली निकाल लें तो?" ऐसा कह कर वो एक तामड़े (बर्तन) में थोड़ी-सी तिल्ली निकाल लाई। फिर उसने सोचा थोड़ी-सी और ले लूँ। इस तरह थोड़ा और थोड़ा और करते-करते, उसे इस बात का अन्दाज़ा ही नहीं रहा कि उसने काफी सारी तिल्ली निकाल ली है।

सुबह जब अँग्रेज़ सैनिक आए तो, उन्होंने देखा कि उनकी खींची लकीर से तिल्ली काफी पीछे चली गई है। "इसका मतलब इसमें से किसी ने तिल्ली चुराई है।" अँग्रेज़ अफसर ने कड़कती आवाज़ में कहा।

उसके एक सिपाही ने कहा, "हो सकता है किसी जंगली जानवर ने खाई हो हुज़ूर।"

"हाँ, लेकिन इतनी सारी!" अफसर ने अविश्वास से कहा।

तभी एक सिपाही बोला, "हुज़ूर देखिए यहाँ थोड़ी-सी तिल्ली गिरी हुई है।"

रात को जब डोकरा-डोकरी काँपते हाथों से तामड़े भर रहे थे, तब थोड़ी-थोड़ी तिल्ली उनसे रास्ते में गिर गई थी। उसका पीछा करते-करते अँग्रेज़ अफसर और सैनिक डोकरा-डोकरी के घर पहुँचे तो देखा कि उनकी तिल्ली पहले से कहीं ज़्यादा है। अफसर को सारा माज़रा समझते देर नहीं लगी। उसने डोकरा-डोकरी को जमकर पीटना शुरू कर दिया। आसपास के घरों के आदिवासियों से यह देखा नहीं गया। उनमें से एक

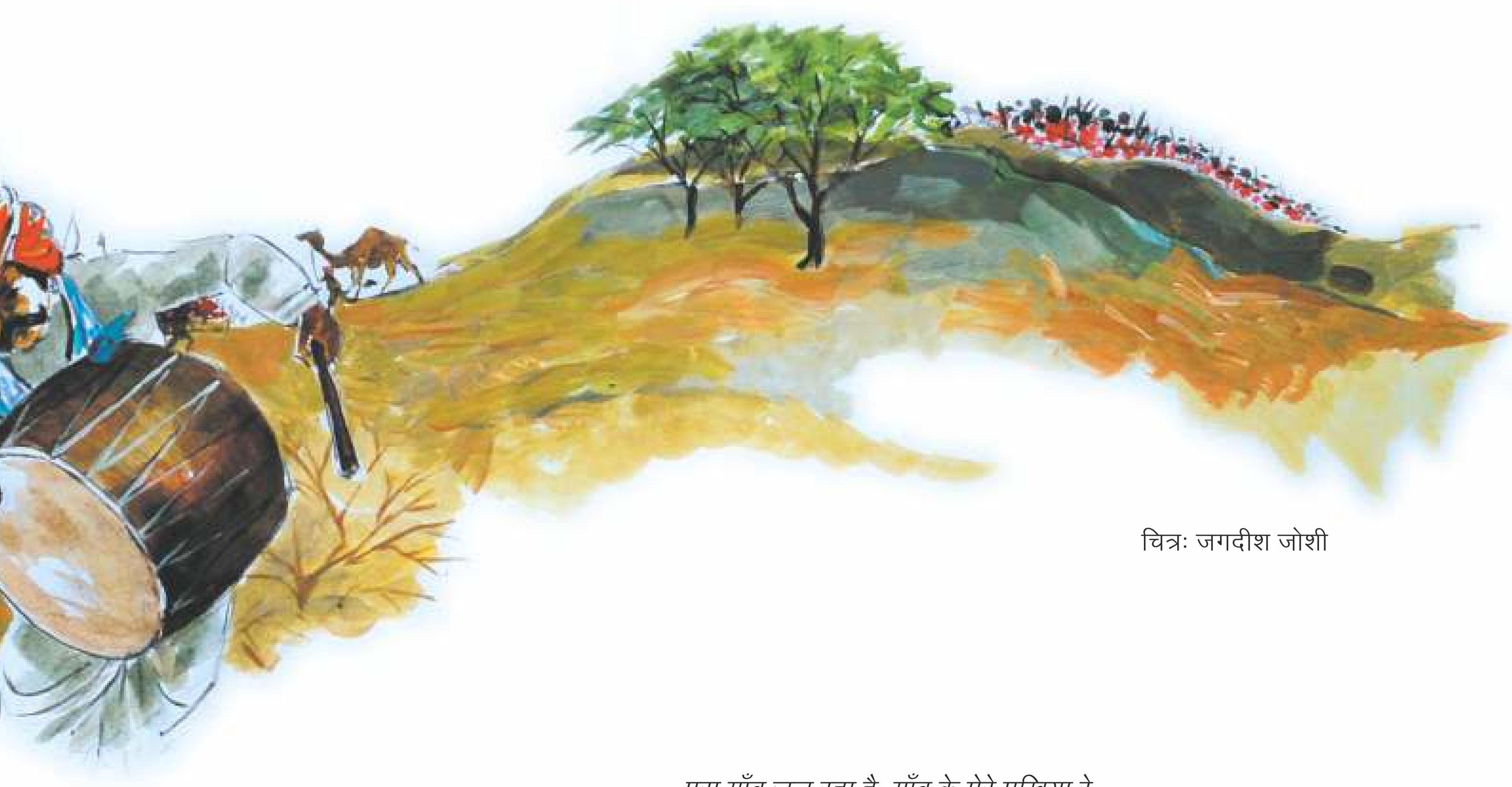

चित्रः जगदीश जोशी

ने मान्दल बजा दिया। मान्दल बजाना संकट की घड़ी में आदिवासियों को इकट्ठा होने का संकेत होता है। एक-एक कर गाँव के सारे आदिवासी वहाँ आ गए। सबने मिलकर अँग्रेज़ अफसर और सिपाहियों को भागने पर मजबूर कर दिया।

अँग्रेज़ अफसर और सिपाही उस समय तो जान बचाकर भाग गए। लेकिन कुछ ही दिन बाद वे फिर से दलबल और हथियारों समेत लड़ाई की पूरी तैयारी के साथ आए।

आदिवासियों को अँग्रेज़ी फौज दल दूर से ही आता दिखा। उन्हें आता देखकर गाँव के लोगों को इकट्ठा करने के लिए फिर वही मान्दल बजाया गया और गीत गाया गया–

पूरो गाम बले रे वारी ढोल बाजे

पूरा गाँव जल रहा है, ढोल बज रहा है

पूरा गाँव जल रहा है, गाड़ी पर गाड़ी जमा हो रही है

पूरा गाँव जल रहा है, गाँव के मेरे मुखिया रे

डिगा, डिगा, डिगा

पूरा गाँव जल रहा है, गाँव के मुखिया इकट्ठा हो

पूरा गाँव जल रहा है, भूला के मुटियारो

पूरा गाँव जल रहा है, भूला के मुटियारो इकट्ठा हो

पूरा गाँव जल रहा है, रोहिड़ा में तम्बू तन गए हैं

पूरा गाँव जल रहा है, मोती लाल आया है

अब तक अँग्रेज़ी सेना काफी करीब आ गई। आदिवासियों ने औरतों को बच्चों को लेकर वहाँ से चले जाने के लिए कहा।

आदिवासियों और अँग्रेज़ी फौज के बीच कड़ा संघर्ष हुआ। आदिवासियों ने कड़ी टक्कर दी लेकिन अँग्रेज़ फौज के पास हथियार ज़्यादा थे। इस संघर्ष में आदिवासियों की हार हुई। लेकिन उस दिन अन्याय के खिलाफ मिलकर संघर्ष करने की आदिवासियों की भावना और एक-दूसरे के साथ खड़े रहने की हिम्मत ज़रूर जीत गई।

आदिवासियों के एकजुट होकर संघर्ष करने की उस दिन की घटना आज भी गीत के रूप में गाई जाती है। लोक में लगभग हर जमघट और मौके पर गीत के रूप में यह कथा सुनी-सुनाई जाती है। यह कथा-गीत इस तरह से गाया जाता है कि लगता है आँखों देखा बयान हो – पूरो गाम बले रे वारी ढोल बाजे।

वरुण ग्रोवर

मुगैम्बो खुश हुआ...

कहते हैं कि जब ग्राहम बैल ने अपना पहला टेलीफोन बनाया और दुनिया के सामने पहली बार फोन पे बात करने का प्रदर्शन किया तो कुछ पत्रकारों ने उनसे पूछा, "अच्छा तो है लेकिन कोई इसे क्यों इस्तेमाल करेगा?" ऐसे ही 1930 के दशक में अमेरिका में मूक फिल्मों के दौर में जब कुछ लोगों ने बोलती फिल्में (टॉकी सिनेमा) बनानी शुरू कीं तो बहुत-से लोगों ने कहा, "इन्हें कौन देखेगा जी? बिना आवाज़वाली फिल्में एकदम दुरुस्त हैं।" कुल जमा यह कि चीज़ों को सही आँकना मनुष्य के बूते की बात नहीं है। लेकिन यह ज़रूर है कि संवाद की महत्ता हमारे इतिहास में लगातार बढ़ती ही रही है। सोचो फिल्मों में संवाद ना हों तो कितना कुछ आँखों और इशारों से समझाना पड़े।

मैं खुद लेखक हूँ इसलिए मुझे संवाद सुनने और उन्हें याद रखने में बड़ा मज़ा आता है। अपने सबसे पसन्दीदा कुछ संवाद तुमसे साझा कर रहा हूँ। तुम्हें कौन-सा डायलॉग बहुत पसन्द है, क्यों? तुमसे पाए कुछ चुनिन्दा डायलॉग हम अगले अंक में प्रकाशित करेंगे।

1. **"काँटों को मुरझाने का खौफ नहीं होता"** (फिल्म *मुग़ल-ए-आज़म*) – अनारकली बादशाह अकबर को कह रही है कि उसे उनकी धमकियों की कोई चिन्ता नहीं है। लेकिन कितनी सुन्दर उपमा – जिसमें विद्रोह भी है, दर्द भी, कविता भी और हार भी।

2. **"तुम्हारा नाम क्या है बसन्ती?"** (फिल्म *शोले*) – बसन्ती को बकबक की बहुत आदत है। वो अपने ताँगे में बैठे जय और वीरू को बात-बात में बहुत बार अपना नाम बता चुकी है ("बसन्ती को फालतू बकबक करने की आदत तो है नहीं।" जैसे संवाद) और जय ने त्रस्त होकर अपने कान में रुई तक डाल ली है। इसके बाद बसन्ती अचानक बोल पड़ती है "यूँ कि आपने मेरा नाम तो पूछा ही नहीं?" इस पर जय अपने कान से रुई निकालते हुए मस्ती में पूछता है "तुम्हारा नाम क्या है बसन्ती?"

3. **"तीसरा बादशाह मैं हूँ!"** (फिल्म *काला पत्थर*) – कोयले की खदानें हैं जहाँ कोयला मज़दूर ताश खेल रहे हैं। मंगल सिंह खदान मज़दूरों का दादा-टाइप है। पत्ते फेंकते हुए वह कहता है, "मेरे पास तीन बादशाह हैं।" ताश की एक गड्डी में कुल मिला के चार ही बादशाह हो सकते हैं और दो पहले से मेज पे फेंके जा चुके हैं। तो सब उसकी बात पर हैरान हो जाते हैं। इस पर मंगल सिंह बादशाह के दो पत्ते सामने रखता है और कोई सवाल उठाए उससे पहले "तीसरा बादशाह मैं हूँ" कहकर चला जाता है। संवाद को महान बनाने में अकसर इस तरह के अप्रत्याशित जवाबों का जितना हाथ होता है उतना ही संवाद बोलनेवाले की आवाज़, अन्दाज़ और व्यक्तित्व का भी होता है। जैसे कि यहाँ मंगल सिंह की भूमिका में शत्रुघ्न सिन्हा थे जिनका लहरा के बोलने का अन्दाज़ इस सीन को एक अलग-सी धार और व्यंग्य दे गया।

4. **"मुगैम्बो खुश हुआ।"** (फिल्म *मिस्टर इंडिया*) – हिन्दी सिनेमा के इतिहास में सिर्फ तीन शब्दों का इतना मशहूर संवाद एक ही और है (*शोले* का "कितने आदमी थे?") लेकिन "मुगैम्बो खुश हुआ!" की खासियत ये है कि आम ज़िन्दगी में इसे "कितने आदमी थे?" से कहीं ज़्यादा जगहों पर इस्तेमाल किया जा सकता है। बहुत से संवाद ऐसे होते हैं जो अपनी फिल्म से निकलकर आज़ाद पंछी हो जाते हैं और किसी भी सन्दर्भ में उछाले जा सकते हैं। अमरीश पुरी द्वारा बोला गया यह संवाद डरावना है (एक विलेन का खुश होना यानी हीरो की शामत) लेकिन इसे किसी भी तरह इस्तेमाल किया जा सकता है। (तुम इसे कभी इस्तेमाल करते हो तो लिख के भेजो कब और क्यों?)

5. **“एक रामदॉस देना।”** (फिल्म *मनोरमा सिक्स फीट अण्डर*) – 2007 में जब यह फिल्म आई थी तो स्वास्थ्य मंत्री थे अम्बुमणि रामदॉस। उन्होंने सिनेमा में सिग्रेट पीते हुए दिखाने और “सिग्रेट” शब्द बोलने पर भी पाबन्दी लगा दी थी। (सिग्रेट स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती है और मेरे हिसाब से निहायत ही बेवकूफी भरी आदत है सिग्रेट फूँकना।) लेकिन फिल्म बनानेवाले कलाकारों को ये पाबन्दी नहीं सुहाई। उनका मानना था कि कलाकारों को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता होनी चाहिए और सरकार को यदि सिग्रेट पर रोक लगानी ही है तो असल ज़िन्दगी में लगाए, सिनेमा में ना दिखाने का क्या फायदा? इस सारी गहमागहमी के बीच आई नवदीप सिंह निर्देशित *मनोरम सिक्स फीट अण्डर* जिसमें फिल्म का हीरो एक सिग्रेट की दुकान पर जाता है (जो दूर से ही दिखाई गई है) और कहता है “एक रामदॉस देना!” सबको यह कटाक्ष समझ नहीं आया होगा लेकिन जिनको आया, उन्हें हमेशा के लिए याद रह गया।

चित्रः अतनु राय

6. फिल्म *जाने भी दो यारों* का अन्तिम दृश्यः महाभारत और *मुगल-ए-आज़म* के मिश्रण से बना हिन्दी सिनेमा के सबसे शानदार दृश्यों में से एक। इसका एक-एक संवाद कातिल है इसलिए इस दृश्य को खोजो और देखो।

7. **“अपने ही पानी में पिघल जाना बर्फ का मुकद्दर है”** (फिल्म *स्वदेस*) लखनऊ के व्यंग्यकार और कवि के. पी. सक्सेना साब ने *स्वदेस* के संवाद लिखे हैं। उनकी खासियत रही है गहरी बातों को सादे शब्दों में बयान करने की। यहाँ गाँव की एक दादी माँ विदेश से कुछ दिनों के लिए भारत में अपने गाँव में आए वैज्ञानिक मोहन भार्गव को समझा रही है कि कहीं भी जाओ, वापस तो यहीं आना है। इस भाव को कितनी काव्यात्मकता के साथ कहा है यहाँ।

8. **“कर्म का धागा बाँधने के लिए मैं धर्म का धागा नहीं तोड़ सकता।”** (फिल्म *लगान*) – फिर से के. पी. सक्सेना साब का एक संवाद। हिन्दुस्तान के अनेक राज्यों में से एक छोटे-से राज्य का राजा अँग्रेज़ अफसर के सामने बैठा है जो उसे मीट खाने को कह रहा है। राजा शाकाहारी है लेकिन उसे धमकी दी गई है कि अगर उसने मीट नहीं खाया तो अँग्रेज़ उसकी रियासत का लगान माफ नहीं करेंगे। बरसात ना होने के कारण राज्य के सारे किसान कर्ज़े में आ चुके हैं। राजा मीट नहीं खाता है। अँग्रेज़ अफसर इससे थोड़ा अचम्भित है क्योंकि इसका हर्ज़ाना बहुत बड़ा होनेवाला है। लेकिन राजा का जवाब है “कर्म का धागा बाँधने के लिए मैं धर्म का धागा नहीं तोड़ सकता।” यह सोच सही है या गलत? तुम उस राजा की जगह होते तो क्या करते?

हिप-हिप हुर्रे!

संजीव

फुटबॉल मैच जैसा कोई मैच होता तो कोई बात होती! पाँवों में बूट नहीं, बदन पर जर्सी नहीं, खेलने को ग्राउण्ड नहीं, फिर भी वह एक मैच था जिसकी उत्तेजना किसी वर्ल्ड कप से कम न थी... मैच नहीं, युद्ध! और साहब कहते हैं, युद्ध में सब कुछ जायज़ होता है। वैसे जाफर चाचा तो उसे सीधे-सीधे मूर्खता करार देते – फकत एक गेंद के पीछे भागते, छीना-झपटी करते बाईस लोग, हज़ार-एक देखनेवाले। बेवकूफी की हद ही हुई न! मगर करते क्या वे भी दर्शकों की सेना में शामिल थे – कस्बे की प्रैक्टिस का सवाल था। आखिर तीन किलोमीटर दूर के गाँववालों ने सीधे-सीधे हमें चैलेंज जो कर दिया था, चैलेंज भी ऐसा वैसा नहीं स्कूल ग्राउण्ड में सबके सामने, "जाओ, जाओ जाकर कंचे खेलो, कंचे! तुम कंगाल क्या फुटबॉल खेलोगे, तुम्हारे पास तो एक अदद ग्राउण्ड तक नहीं है।" सो हमारा पूरा कस्बा उमड़ पड़ा था मैच देखने।

गाँव के इकलौते मैदान में आयोजित था मैच। कोई खुद को लाख तुर्रम खाँ मानता फिरे, हम किसी का ताव बर्दाश्त नहीं करते। अब भला गाँववालों की यह मज़ाल! सो साहब बोलियाँ दगने लगीं। "आज कस्बेवालों को अपनी औकात का पता चल जाएगा!" गाँववालों ने कहा।

"अभी साबित हुआ जाता है। हमारी औकात अभी आपने देखी कहाँ है!" हम कस्बेवालों ने जवाब दिया। गाँव के ग्राउण्ड के एक ओर गाँववाले थे, दूसरी ओर हम। झुण्ड के लोग अभी आते जा रहे थे। देखते ही देखते बादलों के झुण्ड लेकर इन्द्रदेव भी मैच देखने आ गए तो रही-सही कसर पूरी हो गई। एक सिरे पर एक टेबल पर बड़ा-सा कप रखा हुआ था, उसी के बगल में एक छोटा कप भी। मैच जीतनेवाले को बड़ा कप, हारनेवाले को छोटा! माँगी हुई जर्सियाँ – हमारी लाल, गाँववालों की हरी।

सीटी बजी। बादल गड़गड़ाए। खेल शुरू हुआ। उत्तेजना बढ़ती गई। दर्शकों में जिसने भी मूँगफली तोड़ी, उसे मुँह तक न ले जा सका। दसवें मिनट में हमारे दल ने कॉर्नर किक को हेड में बदलते हुए गोल कर दिया। तालियाँ! तालियाँ! तालियाँ! कुछ लोग मैदान में उतरकर नाचने लगे। उन्हें पकड़कर मैदान के बाहर निकाला गया। बादल फिर गड़गड़ा उठे इन्द्रदेव ने भी वृष्टि से हमारी हौसला अफज़ाई की।

सीटी फिर बजी। खेल फिर शुरू हुआ। अचानक बूँदें तेज़ हो गईं। जैसे यह सीटी उन्हीं के लिए बजी थी। क्रिकेट होता तो बन्द हो जाता, पैसेवालों और शरीफों का खेल जो है। मगर हम ठहरे गाँव और कस्बे के लोग। फुटबॉल भी गँवई खेल! सो चलता रहा पूरे शबाब पर! थोड़ी ही देर में ग्राउण्ड कीचड़ से भर गया जुते हुए धान के खेत जैसा! क्या खिलाड़ी, क्या दर्शक भीगकर सब सराबोर!

जैसे-तैसे हाफ टाइम हुआ! पाला बदला। बूँदों ने ज़ोर पकड़ा। दोनों तरफ के गुरुओं ने कुछ ज़रूरी हिदायतें दीं। नुस्खे बताए गए। सीटी फिर बजी। खेल फिर शुरू हुआ। इस बार अपने दल के खिलाड़ियों को हम पहचान न पाए। लाल, लाल न रहा, हरा, हरा न रहा। गेरुए रंग की माटी में सनकर दोनों एक जैसे दिखने लगे। कौन अपना है, कौन पराया पता न चलता! अकसर गफलत में विरोधी पक्ष को पास दे बैठते। और हाय इसी के चलते हम एक गोल खा गए। थोड़ी देर में दूसरा गोल भी, फिर तीसरा, फिर चौथा! हम गोल पर गोल खाए जा रहे थे, वे गोल पर गोल दागे जा रहे थे। खेल समाप्त होने में दस मिनट ही बचे थे। जैसे इसी की चेतावनी देने थोड़ी दूरी पर गुज़र रही पैसेंजर गाड़ी की सीटी बजी। कोलियरी का धँसान क्षेत्र होने के नाते हर गाड़ी यहाँ धीमे पड़ जाती थी।

तभी हमारे दलवालों ने एक चमत्कार किया। वह चमत्कार जो शायद ही दुनिया में कभी हुआ हो और शायद ही फिर कभी दोहराया जाए? हमारे खिलाड़ियों ने विजेता कप उठाया और दौड़कर ट्रेन में सवार हो गए। गाँववाले अवाक – यह क्या हुआ! उनका दल भौंचक यह क्या हुआ। पर हम चकाचक थे। विजेता कप हमारे कब्ज़े में था और हम ट्रेन पर सवार! समझनेवाले समझ गए। लपककर ट्रेन पर जा चढ़े। नासमझ न समझ पाए। गाँववालों का सारा गुस्सा उन्हें झेलना पड़ा। वो कुटम्मस हुई कि कइयों को सालों तक फुटबॉल मैच का दर्द टीसता रहा। जाफर चाचा को भी। खैर साहब, जैसे-तैसे कई-कई टुकड़ों में बँटकर हम अपने कस्बे में लौटे। शाम ढली।

"क्या हुआ मैच में?" कस्बेवालों ने मैच से लौटे लोगों से पूछा। हम क्या बोलते! कोई न कोई बहाना करके टाल जाते। पर जवाब आया दूसरे दिन, "जीता है भाई जीता है! हिप-हिप हुर्रे!" रिक्शे पर विजेता कप पकड़े हमारे कप्तान दुर्दम्य पाण्डे बैठे थे। जिस गली से भी गुज़रते हमारे स्वागत में लोग खड़े हो जाते। कप में पाँच, दस, सौ तक के नोट डाले गए "जीता है भाई जीता है हिप-हिप हुर्रे!" यह चमत्कार का दूसरा चरण था। और तीसरा चरण..?

तीसरे दिन कस्बे के कल्याण केन्द्र में कस्बे के गुरु राय और झँटू चटर्जी, थाने के दारोगा, गाँव के मानिन्द लोगों के सामने विजेता कप के साथ हमारे विजेता दल की पेशी हुई। दारोगा गब्बर सिंह की तरह बेल्ट खोलकर एक-एक खिलाड़ी की आँखों में झाँकते हुए गुज़रे फिर नाटकीय अन्दाज़ में पलटकर हो-हो करके हँस पड़े। उन्हीं के साथ बाकी सब भी। *(शेष भाग पेज 15 पर)*

चित्र : जोएल गिल

एक था हाजी एक था नाजी

स्वयं प्रकाश

चित्रः अतनु राय

एक मिसाल

एक हैदराबादी ग्राहक, “मेरकु चेक डिपॉजिट करना है। कब तक क्लियर करते?”

बैंकर, “दो या तीन दिन में क्लियर हो जाता।”

ग्राहक, “दोनों बैंक तो आमने-सामनेइच्च हैं फिर इत्ती देर कायकू?”

बैंकर, “सर, पूरा प्रौसेस (कार्यवाही) करना पड़ता। मिसाल के तौर पे अगर आप कब्रिस्तान के बाहर एक्सिडेंट में मर गए तो आपकू घर कू लेके जाते। गुसल देते। कफन पहनाते। जनाज़े की नमाज़ पड़ते या फिर मरतेइच्च सामने के कब्रिस्तान में दफन करते।”

◆◆◆

हाजी ने अपने लड़के को योगा क्लास में भेजा।

प्रशिक्षक ने कहा, “सारे बच्चे सीधे लेट जाओ।”

सारे बच्चे सीधे लेट गए।

प्रशिक्षक ने कहा, “सारे बच्चे अपने पैरों से साइकिल चलाओ।”

सारे बच्चे पैरों से साइकिल चलाने लगे।

हाजी का लड़का चुपचाप लेटा रहा।

प्रशिक्षक ने पूछा, “तुम साइकिल क्यों नहीं चला रहे?”

हाजी के लड़के ने जवाब दिया, “मेरी साइकिल ढलान पर है।”

◆◆◆

नाजी ने अपने लड़के से पूछा, “तुमने पड़ोसी के लड़के को गधा कहा?”

लड़का बोला, “हाँ, कहा।”

नाजी ने पूछा, “तुमने उसे नालायक भी कहा?”

लड़का बोला, “हाँ, कहा।”

नाजी ने पूछा, “और तुमने उसे बिल्ली की पॉटी भी कहा?”

लड़का पड़ोसी के घर की तरफ भागते हुए बोला, “अरे! यह तो मैं कहना ही भूल गया।”

◆◆◆

गणित के सर ने हाजी के लड़के से पूछा, “मान लो तुम्हारे पास दस रुपए हैं और उसमें से पाँच मैं ले लेता हूँ तो तुम्हारे पास कितने रुपए बचेंगे।”

हाजी का लड़का बोला, “मेरे पास कहाँ हैं दस रुपए?” सर बोले, “नहीं हैं, पर मान लो कि हैं गणित में मानना पड़ता है। अब बताओ तुम्हारे पास दस रुपए हैं, उसमें से पाँच मैंने ले लिए तो तुम्हारे पास कितने बचेंगे?”

“बीस!” लड़के ने जवाब दिया।

“कैसे?” सर ने पूछा।

“हर बार आपकी ही थोड़ी चलेगी। एक बार हमने आपकी मान ली, इस बार आप हमारी मान लो। वैसे भी छन्नू पहलवान का लड़का मेरा दोस्त है, वह किसी को मेरे साथ चीटिंग करने नहीं देगा।”

चकमक

हिप-हिप हुर्रे!

(पेज 13 का शेष भाग)

कप गाँववालों को लौटाया गया। हम सब से माफी मँगवाई गई। गाँववालों ने हम नालायकों को अपनी करनी के लिए माफ किया और हँसते हुए कप लेकर वापस हुए। हम मज़ाक का केन्द्र भले ही हुए लेकिन सभा में एक स्वर से हमारी इस बचकानी हरकत के लिए हमें बाइज़्ज़त बरी कर दिया गया।

कहा गया, “इसमें लड़कों का कोई दोष नहीं। न बूट, न जर्सी, न ग्राउण्ड फिर भी पहला गोल इन्हीं बच्चों ने किया। अब बरसात और कीचड़ का वे क्या करते वह भी गाँववालों के ग्राउण्ड पर। जिसे अपना समझकर पास दिया, वह कोई और निकला।” यह फुटबॉल मैच इस मायने में भी अद्वितीय रहा कि इसमें हारनेवाली टीम को पुरस्कार मिला। वह पुरस्कार था कस्बे को भव्य फुटबॉल ग्राउण्ड का तोहफा! इसके अभाव में हमें गाँव या कहीं और खेलने जाना पड़ता था। अब कहीं जाने की ज़रूरत न थी। उद्घाटन के मौके पर इसी ग्राउण्ड पर वही मैच दोबारा हुआ। इस बार वह 2-2 से ड्रॉ रहा। खेल के बाद एक भव्य भोज का आयोजन हुआ जिसमें गाँववाले भी शामिल हुए, हम कस्बेवाले भी। और पैसा...? यह वही पैसा था, “जीता है भाई जीता है। हिप-हिप हुर्रे!”

चकमक

मई की चित्र पहेली हल

जु	ला	हा		झू		कू	ड़ा	
		र		म	शा	ल		ब
गु	ल	मो	ह	र		र	ह	ट
च्छा		नि	ब		रु		थ	न
	को	य	ल		मा		क	
ई		म		रे	ल	गा	ड़ी	
ट	ब			गि		य		सु
	गु	ल	द	स्ता		क	म	रा
ठे	ला			न	दी			ही

हम एक जगह बैठे नहीं हैं...

रमा चारी

जनवरी का रविवार था और कड़ाके की ठण्ड पड़ रही थी। संध्या और उसका छोटा भाई कौशल रज़ाई में दुबके टी. वी. देख रहे थे। उनकी माँ डॉक्टर प्रतिभा घर की क्लीनिक में मरीज़ों को देख रही थीं। पापा ने जो कि कॉलेज में प्रोफेसर थे आज घर का गैराज साफ करने का काम हाथ में लिया था। थोड़ी देर में प्रतिभा अन्दर आईं और बच्चों को बिस्तर में बैठा देख बोलीं, "यह क्या दिन भर से एक जगह पर जमे बैठे हो। शाम होने को आ रही है, थोड़ा बाहर जाकर खेलो नहीं तो शरीर में जंग लग जाएगी। चलो उठो।" दोनों बच्चे जानते थे कि खेलना सेहतमन्द है पर इतनी सर्दी में रज़ाई से कौन निकले! इतने में संध्या को कुछ याद हो आया और वह चहककर बोली, "अरे ममा, हम एक जगह कहाँ बैठे हैं, इतना तेज़ चक्कर तो लगा रहे हैं।" कौशल चकराया, संध्या यह क्या ऊटपटाँग बोल रही है, अब माँ डाँटेंगी। लेकिन प्रतिभा हँसने लगीं और बोलीं, "हाँ सो तो है! पर फिर भी उठो और सामनेवाले पार्क के दस चक्कर लगाकर आओ।" अब तो कोई चारा नहीं था, दोनों बाहर निकले।

पार्क में घूमते हुए कौशल ने पूछा, "अच्छा संध्या यह चक्करवाला मामला क्या है जो माँ भी मान रही थीं। हम तो रज़ाई में बैठे थे ना?" संध्या, "हाँ-हाँ माँ तो खुश हो रही होंगी कि वह हमारे लिए जो विज्ञान पत्रिका मँगवाती हैं मैं उसे पढ़ती हूँ। उसी में मैंने पढ़ा था कि हम बैठे-बैठे भी कितनी तेज़ी से घूम रहे हैं।"

कौशल बोला, "मुझे तो कुछ भी नहीं समझ में आ रहा। तुम्हीं समझाओ।"

"देखो यह तो तुम जानते ही हो कि हम जिस पृथ्वी पर रहते हैं वह एक थोड़े चपटे गोले जैसी है और हम उसकी ऊपरी सतह पर रहते हैं।" संध्या बोली।

चित्र- 1
पृथ्वी पर दिखते महाद्वीप

"हाँ तो?"

"पृथ्वी का यह गोला अपनी धुरी पर लट्टू की तरह घूम रहा है। अब क्योंकि हम उस पर ही रहते हैं तो हम भी उसके साथ घूम रहे हैं। ठीक है ना?"

कौशल चकराया-सा बोला, "हाँ, पर पृथ्वी बहुत ही धीरे घूमती होगी क्योंकि हमें तो पता ही नहीं चलता कि ऐसा कुछ हो रहा है। जब हम चक्करवाले झूले पर बैठते हैं तो तुरन्त समझ में आ जाता है कि हम घूम रहे हैं।"

संध्या कुछ सोचते हुए बोली, "झूला तो बहुत छोटा होता है, अपनी पृथ्वी बहुत ही बड़ी है। इतनी बड़ी कि हम हवाई जहाज़ से भी पूरी पृथ्वी नहीं देख पाते हैं। पृथ्वी घूम रही है, इसका हमें दिन और रात से पता चलता है।"

कौशल बोला, "ये दिन-रात कहाँ-से आ गए?"

संध्या, "मैं तुम्हें एक चित्र बनाकर दिखाती हूँ। दिन और रात इसलिए होते है कि जब हमारी पृथ्वी अपनी धुरी पर गोल घूमती है तो उसका जो हिस्सा सूरज की तरफ होता है वहाँ उस समय दिन होता है। जो हिस्सा पीछे पड़ता है वहाँ अँधेरा यानी रात होती है। पृथ्वी के घूमने के कारण उसकी हर सतह पर हर जगह बारी-बारी से रोशनी और अँधेरा यानी दिन और रात होते रहत हैं। एक दिन और एक रात मिलकर 24 घण्टे होते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि पृथ्वी एक चक्कर 24 घण्टे में पूरा करती है।"

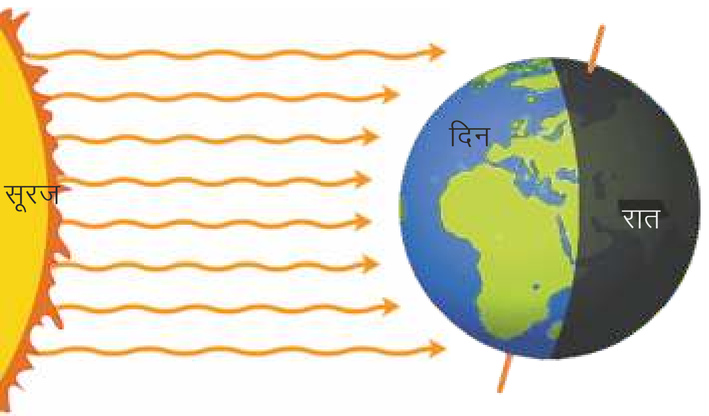

चित्र- 2 दिन और रात

कौशल बोला, “24 घण्टे! मैं कह रहा था ना कि पृथ्वी बहुत धीरे घूमती है। मेरा लट्टू तो एक मिनट में 24 बार घूम जाता होगा।”

संध्या नाटकीय अन्दाज़ में बोली, “ज़रा धीरज रखो... कहानी अभी बाकी है मेरे भाई। यह मत भूलो कि पृथ्वी कितनी बड़ी है। हमारी पृथ्वी एक चपटे गोले की तरह है जिसका व्यास करीब 12,756 किलोमीटर है। यह लम्बाई कितनी है इसका अन्दाज़ इसी से लगा लो कि अपने इस पार्क से करीब 64,000 गुना बड़ी।”

कौशल हैरान था, “बाप रे, मैं तो पार्क के पाँच चक्कर लगाने से ही थक जाता हूँ।”

चित्रः प्रान्त सोनी

संध्या हँसी, “तुम तो हो ही कागज़ी पहलवान! यह तो हुआ पृथ्वी का व्यास। हमें उसकी परिधि पता करनी है जो मुझे याद नहीं।”

“परिधि क्या होती है?” कौशल बोला। उसे संध्या की बातों में मज़ा आने लगा था।

“परिधि यानी पृथ्वी के पेट पर अगर रस्सी लपेटनी हो तो कितनी लम्बी रस्सी लगेगी।”

कौशल बोला, “मैं दौड़कर घर से रस्सी ले आऊँ?”

संध्या उसकी मायूमियत पर हँसी, “घर से? मोहल्ले की सारी रस्सियाँ मिलकर भी उतनी लम्बी नहीं होंगी। मुझे रस्सी की ज़रूरत नहीं है। मुझे एक फार्मूला पता है,

चित्र- 3 व्यास और परिधि

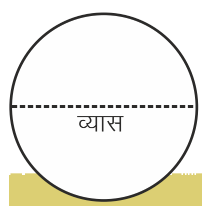

किसी गोल की सतह पर दो आमने-सामने के बिन्दुओं की दूरी को व्यास कहते हैं।

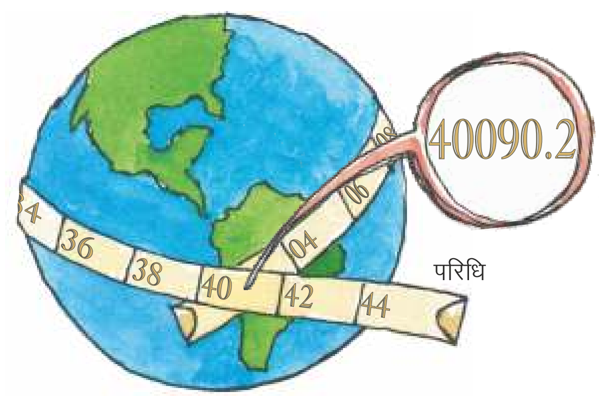

किसी गोले की परिधि और व्यास का अनुपात हमेशा 22.7 होता है। अलग-अलग आकार की चूड़ियाँ लो और देखो कि क्या यह सही है?

गोले के सबसे मोटे भाग पर एक लाईन खीचें तो उसकी लम्बाई गोले की परिधि होगी।

परिधि = 22/7 x व्यास

चलो इससे पृथ्वी की परिधि निकालते हैं।”

पृथ्वी की परिधि = 22/7 x 127756 किलोमीटर

कौशल बोला, “रुको-रुको, मैं करूँगा, मुझे गुणा-भाग करने में मज़ा आता है।

22 x 127756 हुए 280632, अब इसमें 7 से भाग दिया तो हुआ 40090.2 किलोमीटर।”

(शेष भाग पेज 39 पर)

छतें

रुस्तम सिंह

छतें भी तरह-तरह की होती हैं। और वे तरह-तरह के काम आती हैं। पर कुछ छतें किसी काम नहीं आतीं। कुछ नीची होती हैं, कुछ ऊँची, कुछ ढलान जैसी और कुछ समतल। कुछ पक्की और मज़बूत होती हैं, कुछ कच्ची और बारिश में चूती हैं। कुछ छतों को देखकर लगता है कि वे अब गिरीं, तब गिरीं।

कुछ छतों के ऊपर पेड़ झूलते हैं, पक्षी चहचहाते हैं, गिलहरियाँ दौड़ती हैं या थोड़ी देर रुककर कुछ खाती हैं। परन्तु कुछ छतों के आसपास एक भी पेड़ नहीं होता; और कुछ अन्य से दूर-दूर तक कोई पेड़ नज़र नहीं आता।

मुझे एक ऐसी छत की याद है जिस पर खड़े होकर बहुत दूर ईंटोंवाले भट्‌टे की चिमनी नज़र आती थी।

कुछ छतों की मुण्डेर नहीं होती, जैसे झोंपड़ियों की छतें। कुछ छतें इतनी जर्जर होती हैं कि हर बारिश में गिर जाती हैं। इस तरह की छतों पर आप चढ़ नहीं सकते, बैठ नहीं सकते, कुछ कर नहीं सकते।

खरपतवार की छतें सबसे सुन्दर लगती हैं; वे हर वर्ष नई खरपतवार से बुनी जाती हैं।

बहुमंज़िला मकानों की छतें काली-काली टंकियों से पटी रहती हैं। कौन जाना चाहता है ऐसी छतों पर?

कवि कविता लिखता है अकेले छत पर बैठकर; किशोर लड़की घरवालों से बचकर मोबाइल पर बतियाती है – तब उसके चेहरे पर कई किस्म के भाव आते हैं!

जब मैं अभी ज़रा छोटा था तो मैंने *न्यूयॉर्क की छतें* नामक फिल्म देखी थी। तुम भी उसे देखना। उसमें छतों पर होनेवाली बहुत-सी बातें थीं, जिनमें से एक यह भी थी कि एक युवा लड़का दूरबीन से दूसरी छतों को देखता था!

चित्रः कनक

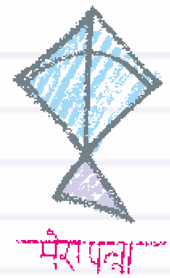

पर्यावरण

आज पर्यावरण दिवस है। और आप सभी लोग सोच रहे होंगे कि ग्लोबल वार्मिंग बढ़ती जा रही है। इसे कम कैसे किया जा सकता है। अब क्या कम होगा। जो होना था वह हो चुका। यदि आज सभी धरती को बचाने के लिए इतने उत्सुक हैं तो यह बताएँ कि यह उत्सुकता पहले कहाँ चली गई थी। आप लोग 5 जून को ही क्यों पर्यावरण दिवस मनाते हैं। मैं तो चाहता हूँ कि प्रत्येक दिन ही हम सभी मिलकर पर्यावरण दिवस मनाएँ। यदि ऐसा पहले से ही करते और हर परिवार के लोग मिलकर कम से कम 5-5 पौधे लगाते रहते तो शायद आज यह नौबत नहीं आती।

–आशीष सिंह, अपना स्कूल, काननुर, उ. प्र.

आमों का मौसम

जब हवा चलेगी ज़ोर-ज़ोर
बच्चे भागेंगे सुनकर शोर
ये है मौसम आमों का
लटक रहे हैं आम बगीचों में
उनको पाने की सोच रहे घर में
जाएँ बगीचों में आम के नीचे
हवा चले जब तब हम सोचें
हवा चले झर-झर-झर
आम गिरें भर-भर-भर
जल्दी-जल्दी से हम आमों को बीन लें
बागवाले से बचकर घर को निकलें

–जुगेश कुमार, दूसरी, अपना स्कूल, कानपुर, उ. प्र.

साँप, पत्थर और खून

– शुचि बजाज, आनन्द निकेतन डैमोक्रेटिक स्कूल, भोपाल

बादल क्या है!

राजेश जोशी

बादल क्या ऊँट है
नीले रेगिस्तान में
जिसके पेट में पानी हिलता है!

बादल क्या हाथी है
जो सूँड में भरकर नदी
पानी इधर-उधर उड़ाता है!

बादल क्या है

आखिर उसके आते ही
मेरा मन इतना खुश क्यों
हो जाता है
क्या मेरे अन्दर के पानी
और उसके अन्दर के पानी में
कोई नाता है!

बादल क्या है

बादल कुआँ तितली है
जो समुद्र का पराग-केसर
चुरा कर ले जाता है
और सारी धरती पर खिलाता है
पानी के फूल!

बादल क्या है!

(बादल क्या है कवितांश)

चित्रः तापोशी घोषाल

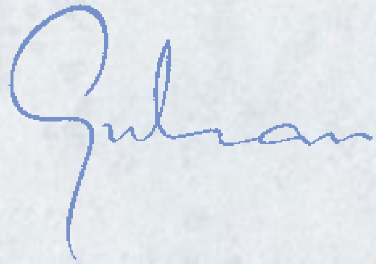

बोलीरंगोली

प्यारे चित्रकार बच्चो,

इस बार दो हज़ार से भी ज़्यादा चित्र मिले आपके। हैरान होता हूँ कि दो पंक्तियों को फैलाकर आप सब कैसे इतने सारे रूप दे लेते हैं!

यही तो आर्ट है – एक रूप में छुपे अनेक रूप ढूँढना – और उन्हें चितराना। कभी कविता में, कभी पेंटिंग में, और कभी संगीत में।

मुझे पंक्तियाँ गढ़ने में मज़ा आता है, आपको उनके चित्र बनाने में। एक और पंक्ति दूँ – चित्र बनाओगे....!

इक बिजली की नोंक लगी ऊनी बादल को
उधड़ के तागा तागा बादल बरस गया।

- गुलज़ार

हो सकता है बड़े तुम्हें इसके अर्थ बताएँ। उनके अर्थ सुनो-समझो पर चित्र अपने मन का ही बनाओ...। कोशिश करना कि तुम्हारे चित्र हमें 15 जून तक मिल जाएँ। चित्र के साथ अपना पता, कक्षा, फोन नम्बर ज़रूर लिखना। पता है -

चकमक, एकलव्य,
ई-10, शंकर नगर,
शिवाजी नगर, भोपाल -16
(फोन - 09425010115)
चाहो तो ईमेल कर दो
chakmak@eklavya.in

बादल ने अब गरज के गला साफ किया है
आसन लगा के बैठ गया आसमान में
जब गुनगुनाती आएँगी बूँदें ज़मीन पर
पत्ते बजाके गाएगा मल्हार कान में

– आनन्द चौहान, आठवीं,
विद्या ज्ञान स्कूल,
सीतापुर, उ.प्र.

–विक्रम राज, नवीं,
किलकारी बाल भवन,
पटना

– प्रासून जैन,
बारहवीं, आनन्द विहार स्कूल, भोपाल

– इशिता सिंघल, दसवीं,
जेसी पब्लिक स्कूल, रुद्रपुर, उत्तराखण्ड

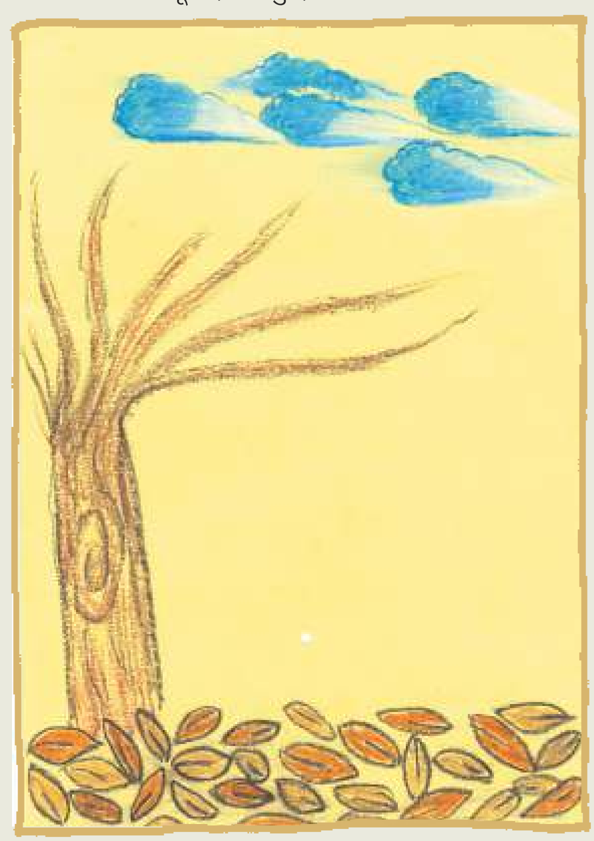

– भारती कुशवाह, आठवीं,
गुँजन एक गूँज, आगरा

बादल ने अब गरज के गला साफ किया है
आसन लगा के बैठ गया आसमान में
जब गुनगुनाती आएँगी बूँदें ज़मीन पर
पत्ते बजाके गाएगा मल्हार कान में

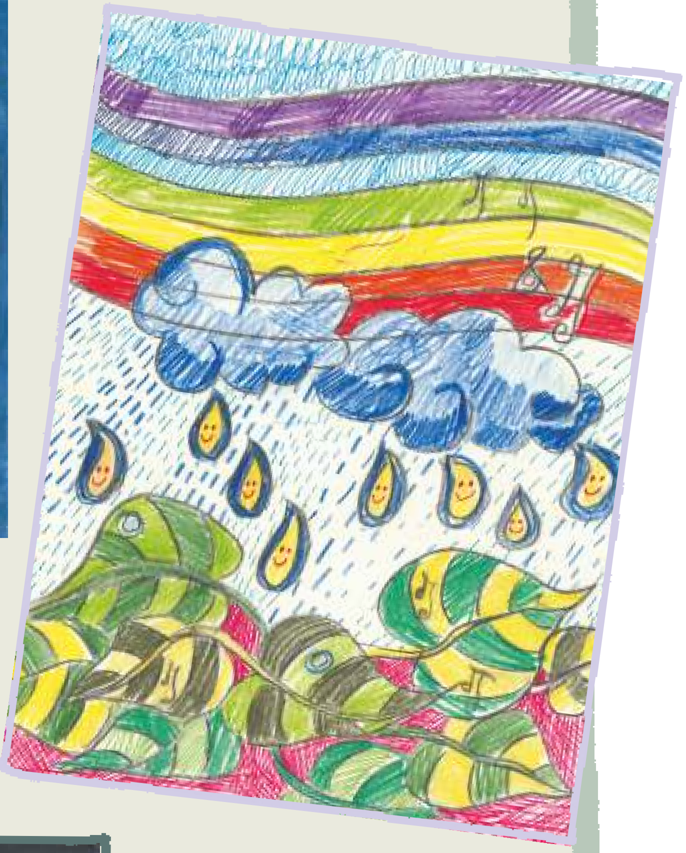

– अंकित सिंह, आठवीं,
डी.पी.एस, पुणे

बोलीरंगोली

– अमय शॉवक, आठवीं,
दून स्कूल, देहरादून

बंटी की नासमझी

एक बार एक आदमी अपने सिर के दर्द का इलाज कराने डॉक्टर के पास आया। डॉक्टर कहते हैं कि तुम रोज़ फलों को उनके छिलकों के साथ खाओ।

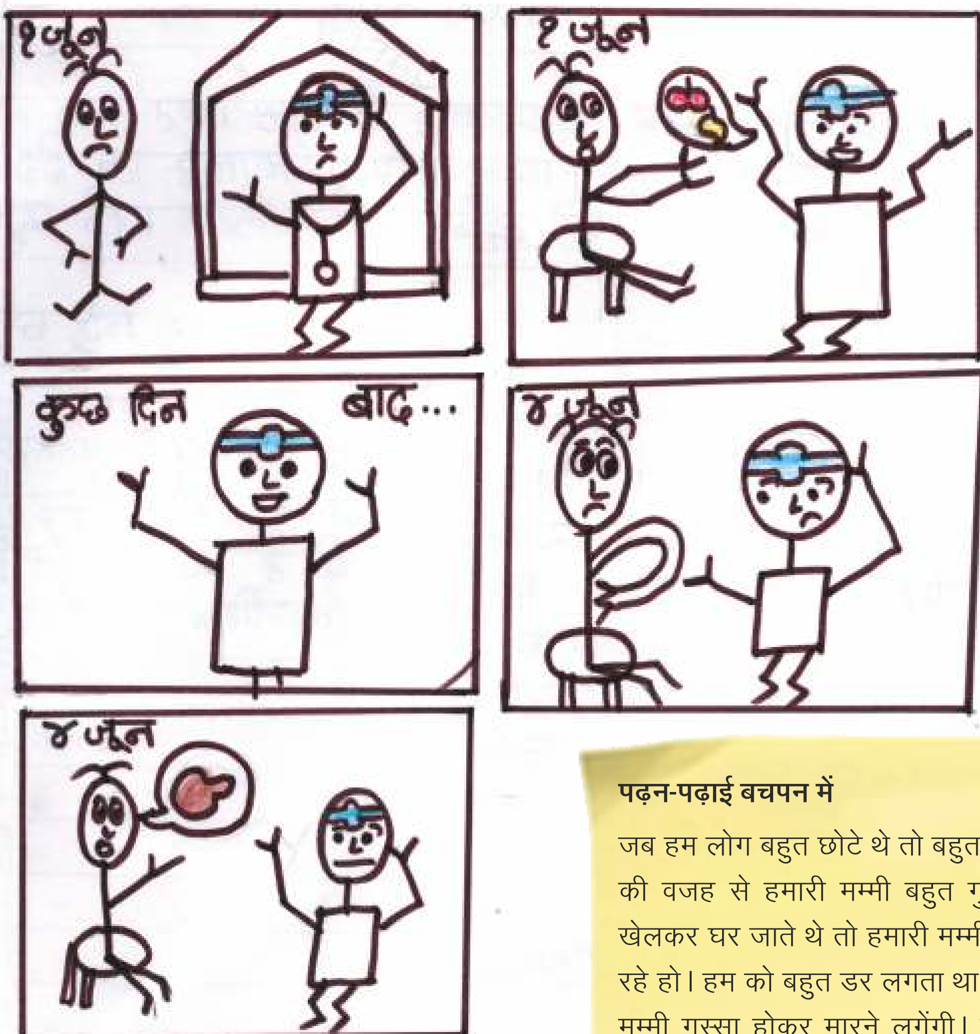

कुछ दिन बाद...

वह आदमी डॉक्टर के पास फिर आता है पर दूसरी तकलीफ के साथ। वह डॉक्टर को कहता है कि उसके पेट में दर्द है। डॉक्टर एकदम आश्चर्य में पड़ जाता है। और पूछता है कि उसने क्या-क्या खाया? आदमी कहता है कि नारियल छिलके के साथ खाया।

- साना उर्कूडे, सातवीं,
डी.पी.एस, पुणे

– नीलेश, सातवीं, हबीबिया स्कूल, भोपाल, म. प्र.

पढ़न-पढ़ाई बचपन में

जब हम लोग बहुत छोटे थे तो बहुत शरारत करते थे और हमारी शरारत की वजह से हमारी मम्मी बहुत गुस्सा करती थीं। जब भी हम लोग खेलकर घर जाते थे तो हमारी मम्मी पूछती थी कि तुम लोग कहाँ से आ रहे हो। हम को बहुत डर लगता था कि अगर कहेंगे कि खेलने गए थे तो मम्मी गुस्सा होकर मारने लगेंगी। इसलिए अपनी जान बचाने के लिए मम्मी से झूठ बोलना पड़ता था कि हम लोग दादी के साथ खेत में गए थे।

इसकी वजह से हमारी जान बच जाती थी और मम्मी दादी से कभी पूछती नहीं थी कि ये आपके साथ खेत में गए थे या नहीं। ऐसे ही खेलते-खेलते हम लोग बड़े हो गए और बाहर खेलना भी बन्द कर दिए। लेकिन घर में अपने भाई-बहन के साथ कैरम-बोर्ड या लुक्का-छिपी खेलते थे। जब घर में भी खेलते थोड़े और बड़े हुए तो मम्मी ने मना कर दिया कि अब नहीं खेलना है। पढ़ाई पर ध्यान दो। और हम लोग खेलना बन्द करके पढ़ाई पर ध्यान देने लगे।

– ज्योति कुमारी, नवीं, नारायणपुर, बिहार

प्यासी मछली

एक मछली थी। जहाँ वह रहती थी उस जगह का पानी सूख गया था। वह पानी की तलाश में वहाँ से चली तो उसे आगे ऊँट मिला। ऊँट बोला, "मछली, मछली तुम कहाँ जा रही हो।" मछली बोली, "मैं पानी की तलाश में जा रही हूँ।" ऊँट बोला, "अगर तुम ऐसे पैदल-पैदल जाओगी तो रास्ते में पानी के बिना तड़पकर मर जाओगी।" मछली बोली, "थोड़ी देर में मैं वैसे भी मर जाऊँगी। इससे बढ़िया यह है कि मैं पानी ढूँढ लूँ। क्या पता मैं बच जाऊँ।" थोड़ी दूर चलने पर मछली थक गई और तड़पने लगी। उसे एक पेड़ दिखाई दिया। वह उस पेड़ के नीचे थककर गिर गई। उस पेड़ पर एक चिड़िया रहती थी। वह मछली को देखकर समझ गई कि यह पानी के बिना तड़प रही है। चिड़िया ने अपने घोंसले से दीपक निकाला और उसमें रखा पानी मछली को पिलाया। तब जाकर मछली की जान में जान आई। मछली ने चिड़िया को धन्यवाद दिया और फिर पानी की तलाश में निकल गई। उस दोपहर के समय मछली ऊपर व नीचे दोनों तरफ से तपने लगी। थोड़ी देर में वह वहीं छटपटाने लगी और मरने जैसी स्थिति में हो गई।

तभी उस ऊँट को मछली की याद आई और वह सोचने लगा नदी तो बहुत दूर है। मैं ही उसे नदी पर ले जाता तो वह बच जाती। वह मछली को ढूँढने के लिए उसी दिशा में चल पड़ा। उसे रेत पर मछली दिखाई दी। जो मरी हुई जैसी पड़ी थी। ऊँट ने रोते हुए उसे उठाया और दौड़ता

—तौसिफ खान,
चौथी, जयपुर, राजस्थान

हुआ नदी पर पहुँचा। नदी पर जाकर उसने मछली को पानी में छोड़ दिया। थोड़ी देर तक मछली चुपचाप पड़ी रही। ऊँट को मन ही मन बहुत दुख हो रहा था कि मैंने बहुत बड़ी गलती कर दी। मैं उसे पहले ही ले आता तो शायद यह बच जाती और रोने लगा। तभी मछली धीरे-धीरे हिलने लगी। और अपनी आँखें खोली। ऊँट को अपने पास बैठकर रोता हुआ देख मछली बोली कि तुम क्यों रो रहे हो। ऊँट उसे देखकर बहुत खुश हुआ और मछली भी खुश हो गई।

—यह कहानी प्रिया, 6 वर्ष सवाईमाधोपुर ने अपनी शिक्षिका भारती के साथ मिलकर बनाई है।

लोमड़ी का डर

एक लोमड़ी और शेर रहते थे। एक दिन लोमड़ी पानी पीने जा रही थी और उधर से शेर आ रहा था और जब लोमड़ी पानी पीने जा रही थी तो उसने शेर को देख डाला। लोमड़ी काँपने लगी। शेर बोला, "अरे देखो, लोमड़ी कैसे काँपने लगी। देखो मेरे से सब लोग डरते हैं। देखो जंगल का राजा मैं ही हूँ।" तो सब बोले, "नहीं हो तुम इस जंगल के राजा।" फिर वो सब चिल्लाने लगे। फिर वो सब शेर को मारने लगे। "तुम नहीं हो इस जंगल के राजा।"

—चंचल साहू, चौथी, अजीमप्रेमजी स्कूल, धमतरी, छत्तीसगढ़

गणित की नौ टंकियाँ

ज्ञान चतुर्वेदी

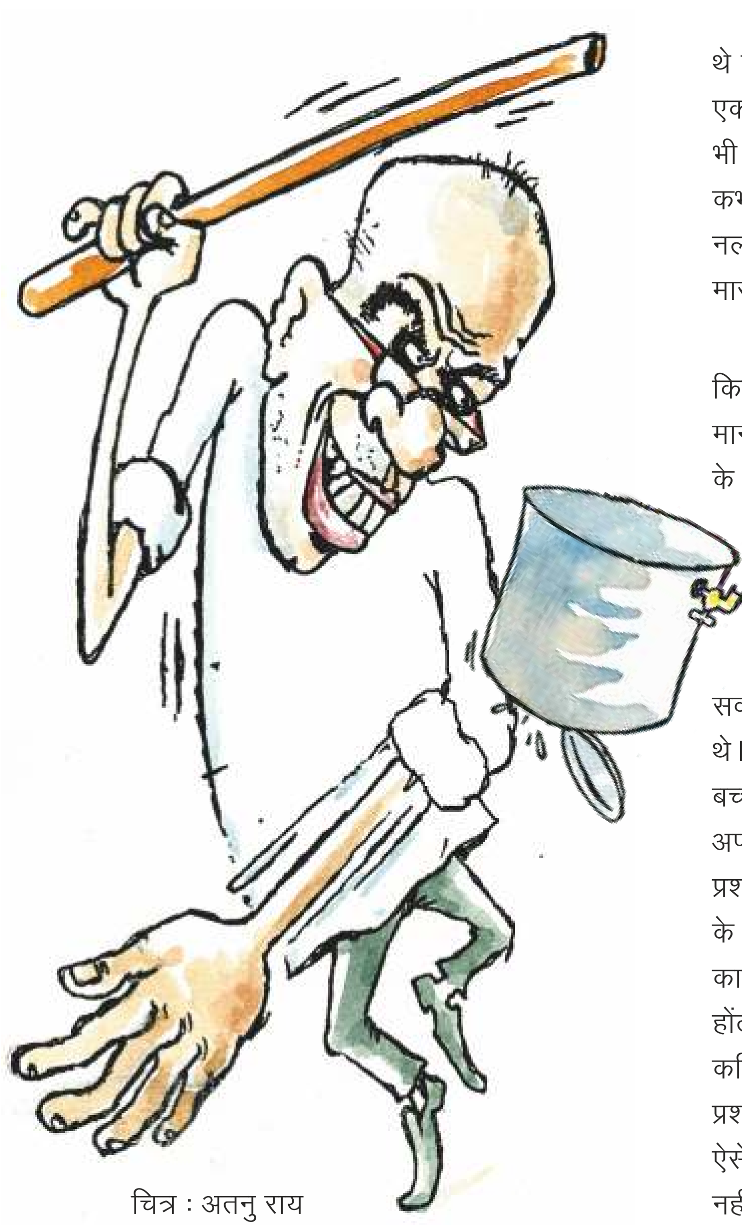

चित्र : अतनु राय

गणित के सवालों ने मुझे हमेशा एक अलग ही तरीके से परेशान किया है। ऐसी-ऐसी अजीब घटनाएँ हर सवाल में लिखी होती हैं कि वैसी घटनाएँ यदि जीवन में कहीं घटें तो उसके ज़िम्मेदार आदमी की बढ़िया ठुकाई हो जाए।

खासकर, टंकी और नलवाले प्रश्न। ये मुझे न तब समझ आते थे जब मैं पाँचवीं में था, न ही अब। ये कौन-सी बात हुई कि आप एक साथ टंकी को भरनेवाले नल खोल दें, और खाली करनेवाले भी! और हमसे पूछें कि टंकी कितनी देर में भरेगी? हमारे पिताजी कभी घर पर पानी की ऐसी क्या कैसी भी फिज़ूलखर्ची देख लेते तो नल खुला छोड़ देनेवाले को इसी टंकी के पानी में फींच-फींचकर मारते।

हमारे गणित के मास्साब का नाम बाबूजी मास्साब था। वे किताब से कहीं ज़्यादा, डण्डे को पढ़ाई का आवश्यक उपकरण मानते थे। वे एक बार किताब के बिना तो पढ़ा सकते थे, पर डण्डे के बिना कक्षा में प्रवेश करने को वे लगभग गैर-कानूनी मानते थे। वे पढ़ाते तो बहुत अच्छा थे परन्तु मारते उससे भी अच्छा थे। वे मानते थे कि गणित के सवाल होते ही ऐसे हैं कि उन्हें हल करने की दिशा में पहला कदम डण्डे की मदद के बिना उठाया ही नहीं जा सकता। वैसे वे सवाल देते हुए, हमेशा ही सवाल के सन्दर्भ में उनसे सवाल पूछने को खूब प्रोत्साहित करते थे। यह बात अलग है कि प्रश्न पूछनेवाले की हिम्मत करनेवाले बच्चे की वे कानकुच्ची कर डालते थे। कानकुच्ची करने का उनका अपना रेखा गणित (ज्योमेट्री) वाला सिद्धान्त था जिसके अन्तर्गत वे प्रश्न करनेवाले का कान लगभग 90 डिग्री से मोड़ते हुए, दूसरे हाथ के लप्पड़ से उसी कान पर एक लम्ब-सा कुछ यूँ गिराते थे कि इस कान से उस कान के बीच दर्द की एक वक्र रेखा खिंच जाती थी। होंठों के आमने-सामने के कोण ऐसे हो जाते थे कि पता करना कठिन हो जाता कि वे न्यून कोण पर हैं कि विषम कोण पर? सो प्रश्नों पर प्रश्न करने के अपने खतरे थे। फिर भी, गणित के प्रश्न ऐसे होते ही थे कि बाबूजी मास्साब से प्रश्न पूछे बिना मुझसे रहा भी नहीं जाता था।

जब पहली बार उन्होंने यह प्रश्न दिया कि एक टंकी में भरनेवाले तो दो नल हैं और खाली करनेवाला एक नल है। यदि सारे नलों को एक साथ खोल दिया जाए तो बताओ टंकी कितनी देर में भरेगी? सारे बच्चे फटाफट सवाल को हल करने में मुब्तिला हो गए। इधर मैं परेशान था। यह क्या तमाशा है? सारे नल एक साथ क्यों खोल रहे हो यार? ऐसे कैसे भरेगी टंकी? मैंने हाथ उठाकर प्रश्न किया कि मास्साब, यह तो बड़ी गलत बात हुई। खाली करनेवाला नल तो बन्द होना चाहिए न, तब तो जाकर टंकी भरेगी?

बाबूजी मास्साब नाराज़ हो गए। वे बोले, “बेटा, नल तो सारे खुले रहेंगे। किसी ने एक नल को भी हाथ लगाया तो कूटकर रख दूँगा। प्रश्न तो इसी से बनेगा न? अबे, तू उस नल को बन्द कर देगा तो टंकी भरने, न भरने का प्रश्न ही कहाँ रह जाएगा?”

पर मैं सन्तुष्ट नहीं था।

मैंने हिम्मत बटोरकर आगे कहा कि हमें इसका भी तो एक हिसाब करना ही होगा कि इस एक सवाल के चक्कर में टंकी से कितना सारा पानी फालतू बह जाता होगा?

बाबूजी मास्साब ने धमकाकर कहा कि बेटा, इधर हम सालों से यही प्रश्न हल कराते आ रहे हैं। पानी आज तलक तो खत्म हुआ नहीं। तू क्यों परेशान हो रहा है? अरे, सरकारी टंकी है। पानी खत्म हो जाएगा तो वे और सप्लाई कर देंगे ताकि गणित की क्लास चलती रहे। मैं अब क्या कहता?

मैं चुप हो गया। रटे हुए फॉर्मूले को लगाकर गणित के ये सवाल भी हल करता रहा। परन्तु यह बात मुझे लगातार परेशान करती रही कि यहाँ कहीं फालतू में नल खुला छोड़ दिया गया है। हम सवाल हल करने में ही अपना समय खराब कर रहे हैं। किसी को उठकर इस फालतू बह रहे पानी को बचाना होगा। यही सोचकर मैंने फिर से हाथ उठाया।

इधर बाबूजी मास्साब डण्डे को हाथ में यूँ प्यार से लिए हुए थे मानो बाँसुरी लिए हुए हों। वैसे गणित का संगीत पैदा करने की उनकी वही बाँसुरी थी। वे उसे अकसर बजाते भी थे।

“क्या है बे?” उन्होंने पूछा।

“...मास्साब ये टंकी धरी कहाँ है?” मैंने पूछा।

“क्यों? तू क्या करेगा?” वे चिढ़कर पूछने लगे।

“कुछ नहीं। मैं सोच रहा था कि आप कहो तो मैं अभी जाकर वो नल बन्द कर आता हूँ?” मैंने बताया।

“तू नल बन्द करने चला जाएगा तो ये टंकी और नलवाला सवाल क्या तेरा बाप हल करेगा?” बाबूजी मास्साब ने पूछा।

“नहीं, मैं फटाफट नल बन्द करके आता हूँ। लौटकर ये सवाल भी हल कर दूँगा न।” मैंने कहा।

अरे, सरकारी टंकी है। पानी खत्म हो जाएगा तो वे और सप्लाई कर देंगे ताकि गणित की क्लास चलती रहे।

और तू जो अभी खाली करनेवाला नल बन्द करके आ गया तो यहाँ तो इस सवाल का उत्तर ही गलत निकलेगा। इस टंकी के नल तब तक बन्द नहीं किए जा सकते हैं जब तक कि इस सवाल का उत्तर न आ जाए। यदि कोई नल पहले ही बन्द कर दिया तो गणना गलत हो जाएगी। बाबूजी मास्साब ने मजबूरी बताई और बैठकर सीधे-सीधे, सवाल को हल करने की हिदायत भी दी।

मैंने तब यह सवाल हल तो कर दिया पर कई बड़े प्रश्न मेरे मन में तब भी रह गए थे और आज भी हैं। ये कौन-सा तरीका है टंकियों को भरने का? क्या वास्तव में हमारे पास इतना पानी फालतू है कि हम उसे गणित के सवालों के लिए यूँ बहा दिया करें? जो आदमी, खाली करनेवाला नल यूँ खुला छोड़कर चला जाता है उस लापरवाह के विरुद्ध कार्यवाही करनेवाले सवाल गणित में क्यों नहीं पूछे जाते?

ऐसे ही एक और सवाल गणित में अकसर पूछा जाता था कि यदि राम किसी एक काम को दो दिनों में, श्याम तीन दिन में और रामू पाँच दिन में पूरा करता है, तब अगर तीनों को उसी काम में एक साथ लगा दें तो बताओ कि वह काम कितने दिन में पूरा होगा? बाबूजी मास्साब तो प्रश्न पूछकर बैठ गए, परन्तु मेरा मन विचलित हो गया। मैंने हाथ उठाकर प्रश्न किया।

"सर, ये रामू उसी काम को पाँच दिनों में क्यों पूरा करता है? वह कमज़ोर है या कामचोर है?"

बाबूजी मास्साब ने कहा कि गणित के पात्र ऐसे ही काम करते हैं। इनको कोई कुछ नहीं बोल सकता। रामू भी यदि काम को दो दिन में ही निपटा देगा तो फिर यह सवाल कठिन कैसे बनेगा?

मैंने कहा कि सवाल को कठिन बनाने के लिए हम किसी को कामचोरी करने की अनुमति कैसे दे सकते हैं मास्साब?

"तो क्या करना चाहिए जनाब?" बाबूजी मास्साब ने मेरा कान पकड़कर पूछा।

"रामू को नौकरी से निकाल देना चाहिए, मास्साब।" मैंने राय दी।

"और जो वह परमानेन्ट सरकारी नौकर हुआ तो?"

"तुझे सरकारी नियम कायदों का पता भी है? सरकारी नौकर काम को दो दिनों में करे, चाहे दस दिन में, चाहे न भी करे – उसे नौकरी से नहीं निकाला जा सकता। बाबूजी मास्साब ने बताया कि सरकार के नियम गणित से भी कठिन हैं – तू सवाल हल कर, इनके चक्कर में मत पड़।"

मैं सवाल हल तो करता रहा पर मन नहीं माना तो फिर से हाथ उठाया।

"अब क्या है?"

"मास्साब, मेरे हिसाब से यह काम कभी पूरा नहीं हो पाएगा।" मैंने कहा।

"अच्छा? वो कैसे?" बाबूजी मास्साब ने इस बार न केवल कान पकड़े बल्कि मरोड़ना भी शुरू करते हुए अपनी बात शुरू की।

मैंने मरोड़े जाते कान के साथ अपने सिर को घुमाकर एड्जस्ट करते हुए बात पूरी की। कहा, "मास्साब ये तीनों जन आपस में लड़ते रहेंगे। राम कहेगा कि मैं मूरख थोड़ेई हूँ कि इत्ती जल्दी-जल्दी काम करूँ और तुम दोनों आराम-आराम से? ऐसे टंटे में कोई काम न करेगा।"

बाबूजी मास्साब ने कानवाला हाथ फ्री करके उसी हाथ से करारा थप्पड़ रसीद करते हुए, इस सवाल पर समापन वक्तव्य-सा देते हुए कहा, "बेटा, यह गणित की दुनिया है। यहाँ राम की हिम्मत नहीं है कि फालतू प्रश्न करे। गणित ने यदि तय कर दिया कि वह सबसे तेज़ काम करेगा तो उसे उसी स्पीड से काम करना पड़ता है, भले ही बगल में बैठा रामू उसी काम को पाँच दिन में करने के इरादे से पाँव फैलाकर बैठा रहे। गणित में ऐसा ही होता है। यहाँ, बस फॉर्मूलों का ही कानून लागू होता है। समझे?"

मैं समझ गया था।

गणित में यूँ तो रोज़ ही ऊल-जुलूल सवाल होते थे और मेरा मन उनके बारे में भी बाबूजी मास्साब से पूछने का करता था पर सबसे बड़ा सवाल तो वे खुद थे और हर प्रश्न के उत्तर का डण्डा उनके हाथों में होता था – सो मैं कभी भी ज़्यादा हिम्मत नहीं कर पाया।

पंजाबी बाल उपन्यास

(छठी किस्त)

नदी में बाढ़ और किरली का बच्चों से बिछड़ना

जसबीर भुल्लर

जब समय आया तो किरली मगरमच्छ ने उस गड्ढे को सफेद रंग के अण्डों से भर दिया। अण्डों को सेने के लिए गर्माहट ज़रूरी थी। उसने घोंसले के ऊपर मोटी-मोटी टहनियों की छत डाल दी और छत को गारे से लीप दिया।

अण्डों को गर्मी देने का पूरा प्रबन्ध हो चुका था। घोंसले के अन्दर टहनियों के पत्तों के सड़ने से पैदा होनेवाली उमस ही अण्डों को ज़रूरी गर्मी देनेवाली थी। फुर्सत के समय किरली मादा स्वयं भी घोंसले के ऊपर लेट जाती।

अण्डों से बच्चे निकलने में साठ से नब्बे दिन लग जाते थे। बच्चे निकलने तक घोंसले को गीला रखना पड़ता था। भावी जीव बन्द घोंसले के घने अँधेरे में अण्डों के रूप में पड़े थे। ऐसे देखो तो खतरे की कोई बात नहीं लगती थी। पर किरली मगर को सब खतरों का आभास था। जंगली सुअर, गीदड़, गिरगिट, चीलें, कछुए जैसे कई जीव मगरमच्छ के अण्डों की टोह में रहते थे। किरली इसलिए हर समय चौकस रहती थी। अण्डों की रखवाली पर ही उसके बच्चों की सलामती टिकी थी। पर सिर्फ यही काम भर नहीं था। इतने सारे नवजात जीव जब अण्डे से बाहर निकलेंगे तो रहेंगे कहाँ? उसने अपने अकेली के लिए तो तलैया लम्बी-चौड़ी बना ली थी, पर पूरे परिवार के साथ रहने के लिए तलैया को और भी खुला करने की ज़रूरत थी।

किरली घोंसले की रखवाली करते हुए रोज़मर्रा के काम निपटाती साथ ही खाली समय तलैया को और चौड़ा करने में लगाती। तलैया का घेरा धीरे-धीरे दस वर्ग गज तक हो गया। कुछ दिनों में ही किरली मगरमच्छ ने तलैया की गहराई भी छह फुट तक कर ली थी।

छोटे-छोटे मगरमच्छों के आने से पहले ही छोटी-सी तलैया झील बन गई थी। उस दिन भी तलैया से मिट्‌टी निकालने के बाद किरली ने पानी में एक चक्कर लगाया। बाहर आकर उसने घोंसले को गीला किया और फिर धूप में लेट गई। अचानक किरली चौंकी। उसके खुले मुँह में भोजन कर रहे पक्षी उड़ गए। उसने बन्द घोंसले में से बेचैनी भरी चीखें सुनी थीं। उसने घोंसले की ओर ध्यान लगाया। फिर घबराकर घोंसले की तरफ दौड़ी। आवाज़ें घोंसले में से ही आ रही थीं। किरली अगले पैरों से जल्दी-जल्दी घोंसले की छत तोड़ने लगी। उसे डर था कहीं जंगली गिरगिट ने काण्ड न कर दिया हो। कई बार जंगली गिरगिट बिल बनाकर ज़मीन के नीचे से मगरमच्छों के घोंसलों तक पहुँच जाते थे और अण्डे पी जाते थे।

छत टूट गई तो आवाज़ें और भी ऊँची सुनाई देने लगीं। उसने अगले पैरों से छत का मलबा हटाया और अण्डों की ओर देखा। अण्डों को देखते ही वह खुशी से चिल्लाई।

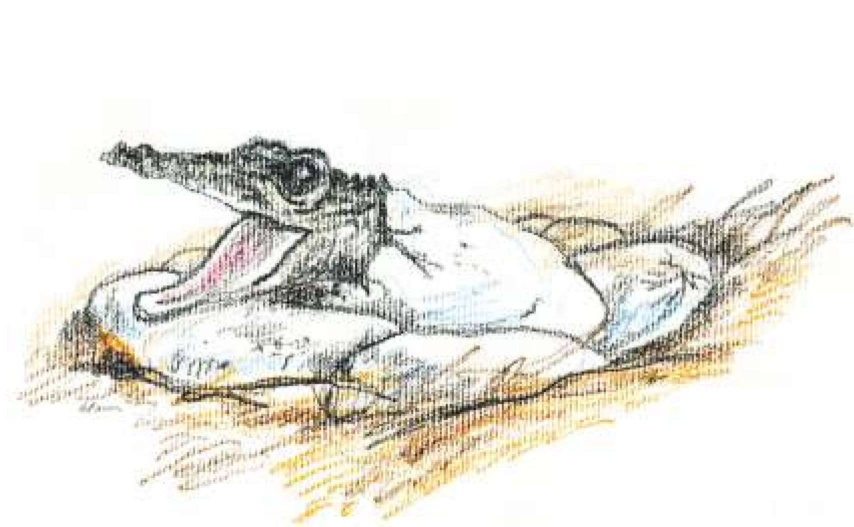

कई अण्डे तिड़क गए थे। बहुत से अण्डों में से बच्चे बाहर निकलने की जी तोड़ कोशिश कर रहे थे। टूट चुके कुछ अण्डों में से उनके छोटे-छोटे सिर बाहर झाँक रहे थे। वह अण्डों के खोलों से बाहर निकलने में छोटे मगरमच्छों की मदद करने लगी। उसने अपना मुँह पूरा खोल लिया। छोटे-छोटे गिरगिटों जैसे बच्चे अण्डों से निकलते ही उसके मुँह में घुस गए। छोटे मगरमच्छों के पहले दल को खुले मुँह में बैठाकर वह उन्हें पानी में छोड़ने चल पड़ी। अण्डे तेज़ गति से तिड़कते जा रहे थे। किरली अपने लाड़लों को पानी में छोड़कर लौटी तो घोंसला फिर से छोटे-छोटे मगरमच्छों से भरा हुआ था। उसने मुँह आगे बढ़ाया तो चार-पाँच बच्चे उसके सिर पर चढ़ गए। उन्हें सिर पर उठाए ही वह फिर से तलैया की ओर चल दी। बाकी बचे छोटे मगरमच्छ भी छोटे-छोटे पैरों से एक-दूसरे को धकेलते उसके पीछे-पीछे चल पड़े।

किरली ने गर्व से अपने बच्चों की ओर देखा। पानी में इधर-उधर तैरते हुए वे बहुत सुन्दर लग रहे थे। उसे कुछ चिन्ता भी हुई। किरली की ज़िम्मेदारी अब और भी बढ़ गई थी। बच्चों को शिकारियों से बचाना था। यह रखवाली अण्डों की रखवाली से ज़्यादा मुश्किल थी। बच्चे शरारती थे ही, अपनी मर्ज़ी से इधर-उधर चले जाते थे। किरली देर तक अपने बच्चों को देखती रही। उसे उन पर बड़ा प्यार आ रहा था। उसका भरा-पूरा परिवार उसकी आँखों के सामने था। बाढ़ के बाद जो तलैया किरली मगरमच्छ को रहने के लिए मिली थी वह छोटी थी। तभी उसके मन में तलैया को बड़ा करने का विचार आया था। वह अपने काम में जुट गई थी। तलैया बड़ी हो गई थी।

छोटे मगरमच्छों के जन्म के बाद तलैया का कुछ और गहरा होना ज़रूरी हो गया था। छोटे मगरमच्छों की संख्या ज़्यादा थी। इस समय भले ही वे तलैया में खुले में विचर रहे थे, लेकिन कुछ बड़े होने पर वही जगह सँकरी हो जाएगी। किरली मगरमच्छ दुबारा अपने काम में जुट गई। मगरमच्छों की दिनचर्या आसपास के वातावरण को प्रभावित करती थी। किरली के जंगल के उस इलाके में रहने के लक्षण भी धीरे-धीरे नज़र आ रहे थे। तलैया से मिट्टी निकाल-निकालकर वह लगातार बाहर फेंकती थी। उस उपजाऊ मिट्टी में कई किस्म के पौधे उग आए थे। ये पौधे इतने घने थे कि उन्होंने तलैया के चारों ओर बाड़-सी बना दी थी। किरली मगरमच्छ का यह घर भी धीरे-धीरे नदीवाले घर जैसा बन रहा था। किरली मगर के मल-मूत्र और पानी के पास होने से वहाँ हरियाली दिनों-दिन बढ़ रही थी। वहाँ कई तरह के कीड़े-मकोड़े पनप रहे थे। अनेक छोटे जीवों और साँप-सपोलों के रहने के लिए स्थान, भोजन और पानी मिल गया था। तलैया ने मेंढकों, मछलियों और कछुओं को आश्रय दिया था।

तलैया के आसपास के पेड़ पहले बेआबाद हुआ करते थे। कुछ जानवर पेड़ों पर चढ़कर घोंसलों में से अण्डे पी जाते थे। या बच्चों को खा जाते थे। पक्षियों के घोंसले उजड़ जाते। रोते-चीखते पक्षी वहाँ से उड़ जाते। नए पेड़ भी पक्षियों के अण्डे पीने या बच्चों को खानेवाले जानवरों को नहीं रोकते थे। पक्षियों के उजड़ने और बसने का क्रम जारी रहता था।

◆ ◆ ◆

...लेकिन अब किरली मगरमच्छ के कारण तलैया के आसपास के पेड़ों पर बने घोंसलों के टूटने का कोई डर नहीं था। उनकी रखवाली के लिए वहाँ अब किरली थी।

एक दिन एक जंगली बिल्ली अपने लालच को त्याग न सकी। वह अण्डे पीने आई तो किरली का भोजन बन गई। इस तरह किरली को भी पक्षियों के कारण कई बार बढ़िया दावत मिल जाती थी। पक्षियों के अण्डे भी सुरक्षित रहते और बच्चे भी। मगरमच्छ के पास रहने से पक्षियों को एक और फायदा मिलता। उन्हें कीड़े-मकोड़े मिल जाते थे। पक्षियों को ये सुविधाएँ किरली के कारण ही मिली थीं। किरली मगर पक्षियों पर यह एहसान यूँ ही नहीं कर रही थी। वह घोंसलों से गिरनेवाले बच्चों को खा जाती थी। कई बार किसी बड़े पक्षी की चोंच से कोई मछली गिर जाती तो किरली उसे झट चट कर जाती थी। तलैया का पानी और मुलायम घास कई जानवरों का आकर्षण बन गई थी। वहाँ हिरण, जंगली बकरे और अन्य कई जीव घास चरने आने लगे थे। पेट भरने के बाद उन्हें यहीं पानी भी मिल जाता था। जानवर इस बात से अनजान थे कि वे किरली मगर का भोजन भी बन सकते हैं। घास चरने आए इन जानवरों का किरली ने कई बार शिकार किया था।

किरली मगर का नया बसेरा अब पुराना हो चुका था। समय बीतने के साथ मगरमच्छों के लिए वहाँ भोजन का अभाव नहीं रहा था। ये किरली

मगर के खुशियों भरे दिन थे। वह तलैया के किनारे कीचड़ में लेटी थी। उसका मन शान्त था। उसने आँखें खोलकर अपने नन्हे मगरमच्छों की ओर देखा। कुछ पानी में तैर रहे थे और कुछ बाहर खेल रहे थे। एक तो दोनों पाँव का एक साथ इस्तेमाल कर गिलहरी की तरह उछल रहा था। और एक बच्चा मिट्टी में से कीड़े-मकोड़े खा रहा था। हालाँकि भोजन तो पानी के भीतर भी था। एक नन्हे मगरमच्छ ने अपनी दुम मोड़कर गोल कर रखी थी। और मच्छर के लार्वा को घेरे में लेकर खा रहा था। मगरमच्छों के रहन-सहन के कारण झील के पास पानी के कई छोटे-छोटे पोखर बन गए थे। इन गड्ढों के मटमैले पानी में बेशुमार लार्वा थे।

किरली के बच्चे अभी बहुत छोटे थे। उन्हें एक साल तक अपना पेट इसी तरह भरना था। केकड़े, मेंढक और मछलियाँ तो उन्हें बेहद स्वादिष्ट लगती थीं। किरली जानती थी कि थोड़े दिनों बाद उन्हें घोंघों के लेसदार जीव और बड़ी मछलियाँ खाना अच्छा लगने लगेगा। इसके बाद वे पक्षियों व घास खानेवाले जानवरों का भोजन करेंगे।

बच्चों को भोजन करता देख किरली की भी भूख जाग गई थी। साधारणतया शिकार के लिए किरली के दो ही तरीके थे। वह शिकार के इन्तज़ार में पानी में लेटी रहती थी। कई बार तो अपना पूरा शरीर ही पानी में डुबा लेती थी। केवल नाक और आँख ही पानी से बाहर रहती थी। आँखें सिर के ऊपर होने का उसे बहुत लाभ था। वह शिकार की आँखों से बची रहकर भी शिकार पर नज़र रख पाती थी।

(अगले अंक में जारी)

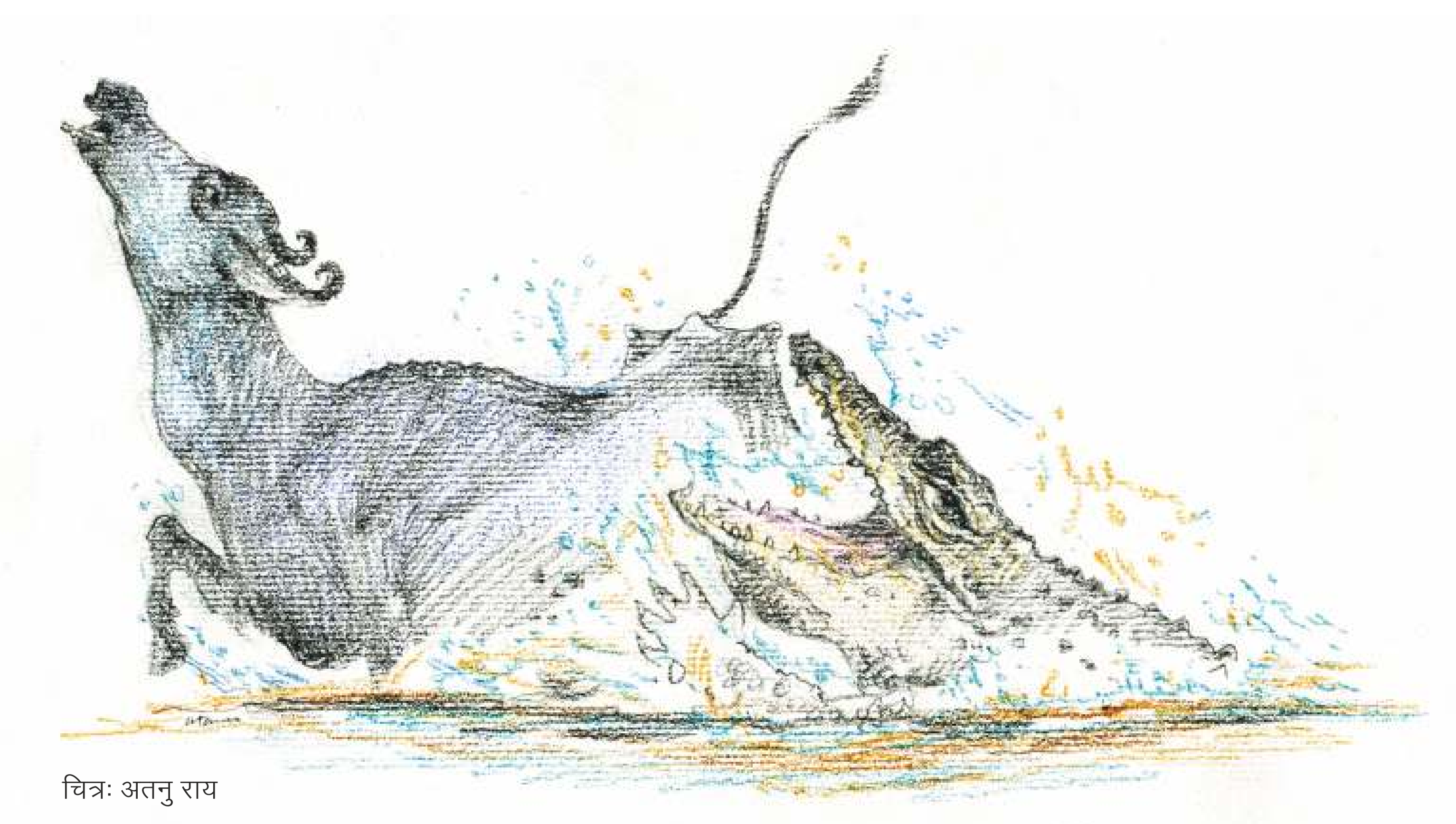

चित्रः अतनु राय

विश्वास और उत्तरदायित्व की संस्कृति
दस्तावेज स्व-प्रमाणीकरण व्यवस्था

दस्तावेज स्व-प्रमाणीकरण का अधिकार अब आपके हाथ में

आवेदक अब स्वयं अपने दस्तावेजों का प्रमाणीकरण कर सकेंगे

- शासन के सभी विभागों, स्थानीय निकायों, स्वायत्तशासी संस्थाओं एवं शैक्षणिक संस्थाओं में आवेदन-पत्रों के साथ प्रस्तुत किये जाने वाले दस्तावेज जैसे अंकसूची, जन्म प्रमाण-पत्र, मूल निवासी प्रमाण-पत्र, जाति प्रमाण-पत्र आदि अब आवेदक स्वयं प्रमाणित कर सकेंगे।
- आवेदक को अंतिम स्तर पर जैसे साक्षात्कार या प्रवेश के समय मांगे जाने पर मूल दस्तावेज प्रस्तुत करना होगा। मिलान के बाद मूल दस्तावेज वापस कर दिये जायेंगे। स्व-प्रमाणन के लिए निर्धारित प्रारूप में स्व-घोषणा-पत्र प्रस्तुत करना होगा।
- कानूनन हलफनामे में यह व्यवस्था लागू नहीं होगी।

प्रारूप — परिशिष्ट- 'एक'

(अ) राज्य शासन के विभाग/स्थानीय निकाय/स्वायत्त शासी संस्था में सेवा के लिये

(ब) राज्य शासन के अधीन शैक्षणिक संस्थानों में प्रवेश के लिये

(स) राज्य शासन के अधीन स्थानीय निकायों/स्वायत्त शासी संस्था में रोजगार प्राप्त करने के लिये

(जो लागू हो उस पर ✓ करें)

स्व-घोषणा

(इस प्रयोजन हेतु प्रस्तुत आवेदन-पत्र के अंत में निम्नानुसार घोषणा संलग्न करें)

मैं .... पुत्र/पुत्री श्री .... उम्र .... वर्ष .... निवासी .... जिला .... मध्यप्रदेश एतद् द्वारा घोषणा करता/करती हूं कि मेरे द्वारा दी गई उपरोक्त जानकारी मेरे ज्ञान एवं विश्वास के अनुसार सत्य है, मैंने उसमें कुछ भी छुपाया नहीं है। मुझे यह संज्ञान है कि मेरे द्वारा असत्य या भ्रामक जानकारी देने पर मेरे विरुद्ध आपराधिक/दण्डात्मक कार्यवाही की जा सकती है। साथ ही मुझे प्राप्त समस्त लाभों को भी वापस किया जावेगा।

हस्ताक्षर

स्थान : .... नाम ....

दिनांक : .... पता ....

गलत दस्तावेजों के स्व-प्रमाणीकरण पर सभी सुविधायें तत्काल प्रभाव से वापस ली जायेंगी।

दस्तावेज स्वयं प्रमाणित करें
अपना समय और धन बचायें

मध्यप्रदेश सरकार

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

दिनाँक - 11-05-2015 D 77108

भास्कराचार्य की पहेली

भास्कराचार्य भारत के एक महान गणितज्ञ थे। उनकी लड़की का नाम लीलावती था। जिसका वर चुनने के लिए उन्होंने एक पहेली का सहारा लिया। क्या अजीब दिन थे!

उन्होंने अपने तीन नौजवान छात्रों को बुलाया जो लीलावती से शादी करना चाहते थे। उन्होंने तीनों को पाँच गोटियाँ दिखाईं – तीन काली और दो सफेद।

फिर तीनों की आँखों पर पट्टी बाँधी गई। तीनों के पीछे रखे मेज़ पर बिना देखे कोई एक गोटी रख दी गई। तीनों को उनके पीछे रखी गोटी का रंग बताना था।

सबसे पहले, पहले व्यक्ति की आँख की पट्टी खोली गई। नियम ये था कि वो अपने पीछे रखी हुई गोटी नहीं देख सकता था पर बाकी दोनों के पीछे रखी हुई गोटियों को देख सकता था। पहले व्यक्ति ने बहुत दिमाग लगाया पर वो बता नहीं पाया कि उसके पीछे कौन-से रंग की गोटी रखी है। लिहाज़ा उसे उसके पीछे रखी गोटी के साथ कमरे से बाहर कर दिया गया।

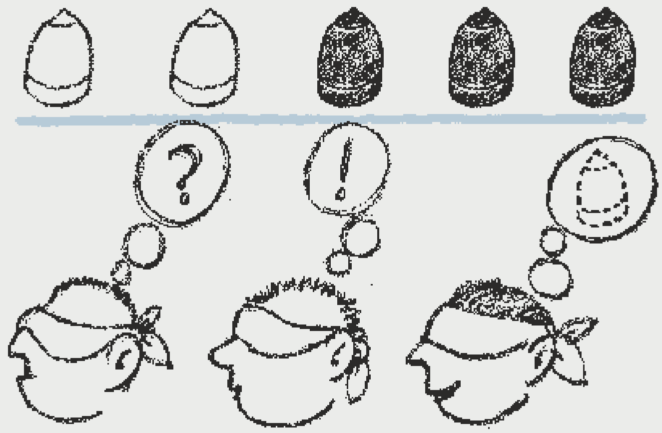

जब दूसरे व्यक्ति की पट्टी खोली गई तो उसने तीसरे व्यक्ति की गोटी देखी। पर वह भी अपनी गोटी का रंग बता नहीं पाया। तो उसे भी उसकी गोटी के साथ बाहर कर दिया गया।

यह सुनते ही तीसरे व्यक्ति ने बिना पट्टी खोले ही अपने पीछे रखी गोटी का रंग बता दिया।

क्या तुम बता सकते हो कि उसने अपनी गोटी का रंग कैसे पता किया?

-मनीष जैन

माथापच्ची

1

यदि एक घोंघा एक गोलाकार रस्ते पर आधी दूरी तयकर वापस मुड़ जाता है और फिर तय की दूरी की आधी दूरी तय करता है तो क्या वह वापस वहीं पहुँच जाएगा जहाँ से उसने चलना शुरू किया था?

2

क्या तुम अपने आसपास पाए जानेवाले ऐसे पाँच पक्षियों के नाम बता सकते हो जो अपना घोंसला ज़मीन में बनाते हों?

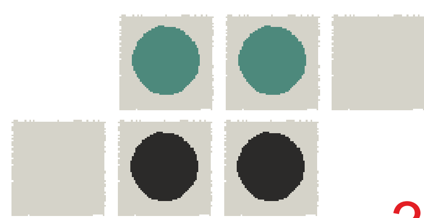

3

तुम्हें इस चित्र में दिख रहीं हरे व काले रंग की गोटियों की जगह की आपस में अदला-बदली करनी है पर ऐसा करते हुए तुम गोटी को केवल दाएँ, बाएँ, ऊपर, नीचे व तिरछे में दी गई खाली जगह में ही रख सकते हो। यानी एक गोटी के ऊपर दूसरी गोटी नहीं रखी जा सकती। ध्यान रहे कि ऐसा तुम्हें कम से कम चरणों में करना है।

चित्रकल्पना : शशिकिरण
दोस्त
चौथी किस्त
गोविन्दो मेरा बहुत अच्छा फ्रेंड था। वह कभी लेट नहीं होता था, कभी छुट्टी भी नहीं लेता था और हमेशा मेरे साथ ही स्कूल और ट्यूशन जाता था। हम लंच भी साथ ही खाते थे।
ये ले तेरे हिस्से की रोटी-सब्ज़ी रख दी है।
हाँ ठीक है, मैं रोटी लास्ट में खाऊँगा। भुजिया तेरे घर में जैसी बनती है बड़ी सही लगती है। तू थोड़ा चावल खा न मेरे डिब्बे से।
नहीं यार, चावल भी तू ही खा ले।
क्रिकेट में कुछ न आने पर भी गोविन्दो मुझे पार्टनर बना लेता था। वो काफी अच्छा खेलता था, बस हिन्दी और इंग्लिश टेस्ट में क्लीन बोल्ड हो जाता था।
यार अब तो फास्ट बॉलर आ रहा है।
तू बस टुचका के रन भाग, बाकी मैं देख लूँगा।

मेरा घर टीचर्स कॉलोनी के बीच में था। इससे फायदा ये था कि स्कूल बहुत पास में था पर नुकसान ये था कि छुट्टी के बाद भी टीचर्स से बच नहीं सकते थे।
बगीचा
टीचर का घर
हमारा घर
रेलवे सबस्टेशन
खेत
तालाब
कॉन्ट्रैक्टर का घर
स्कूल
हमें अकसर टेस्ट की कॉपी टीचर के घर पहुँचाने की ड्यूटी मिलती थी।
क्या हमारी कॉपी पहले ही चेक कर दी होगी?
हो सकता है! यह भी हो सकता है कि वो हम दोनों पर भरोसा करती हैं कि हम कुछ गड़बड़ नहीं करेंगे।
स्कूल में कुछ गड़बड़ करो तो खबर टीचर ही घर पहुँचा देते थे।
आज शशि मुर्गा बना था।
अच्छा!

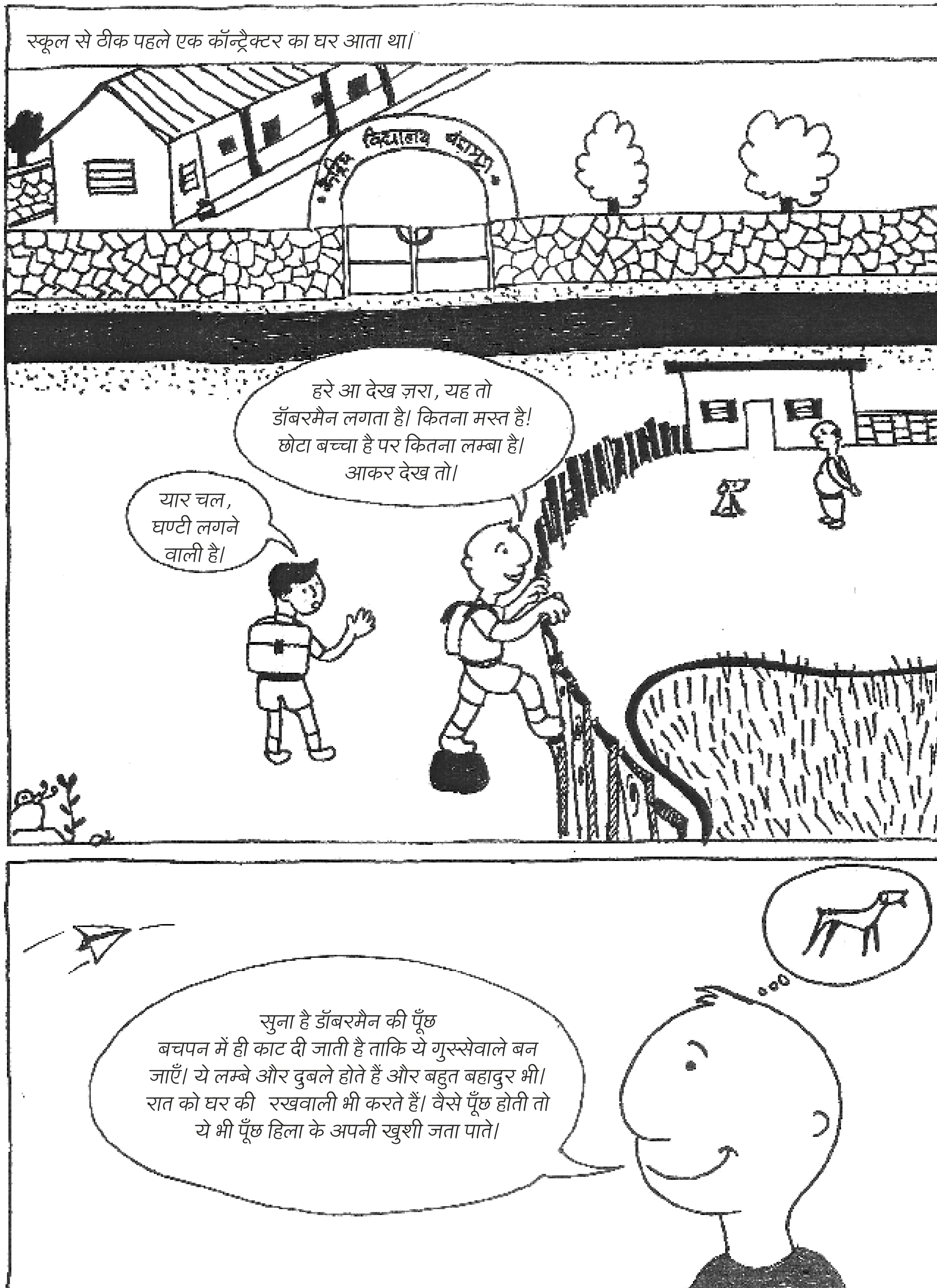
स्कूल से ठीक पहले एक कॉन्ट्रैक्टर का घर आता था।
हरे आ देख ज़रा, यह तो डॉबरमैन लगता है। कितना मस्त है! छोटा बच्चा है पर कितना लम्बा है। आकर देख तो।
यार चल, घण्टी लगने वाली है।
सुना है डॉबरमैन की पूँछ बचपन में ही काट दी जाती है ताकि ये गुस्सेवाले बन जाएँ। ये लम्बे और दुबले होते हैं और बहुत बहादुर भी। रात को घर की रखवाली भी करते हैं। वैसे पूँछ होती तो ये भी पूँछ हिला के अपनी खुशी जता पाते।

स्कूल की घण्टी का समय 9:15 का होता था। तब तक घड़ी महाशय बड़ी स्पीड से चलते थे पर घण्टी बजते ही एकदम धीमे हो जाते थे। मुझे तो लगता था कि स्कूल के लोग ही सारी घड़ियों को घण्टी के बाद स्लो और छुट्टी के बाद फास्ट कर देते हैं। वैसे मैं इस बात को कभी सिद्ध नहीं कर पाया।
समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता।
पता नहीं घण्टी कब बजेगी! आखिरी पीरियड इतना लम्बा क्यों लगता है?
परिश्रम ही सफलता की कुंजी है।
रोल नम्बर 35
यस सर!

जारी...

बैल की अकल

पंडित भट्टाचार्य सीधे-सादे, भले, शिष्ट, सौम्य किस्म के आदमी थे। उनके घर सरसों के तेल की ज़रूरत आन पड़ी है इसलिए वे तेल खरीदने कोल्हू पर आए हैं।

कोल्हू के घर पर बड़ी-सी घानी है। एक बैल उसे घुमा रहा है। उसके गले में एक घण्टी लटक रही है। बैल चलता जाता और घानी भी उसके संग घूमती रहती। और सरसों से तेल पिरता रहता। बैल के गले की घण्टी टूँ टँग टूँग करती रहती।

पंडित रोज़ आते और यह देखते पर आज उनको अचानक गहरा आश्चर्य हुआ। वे आँखें फाड़े देखते रह गए। वाकई यह तो कमाल की चीज़ है!

सुकुमार राय

अनुवादः रुद्राशिस चक्रवर्ती

कोल्हूवाले से पूछा, "अरे ओ लड़के वो चीज़ है क्या?"

लड़के ने कहा, "वो तो घानी का पेड़ है उसी से तो तेल निकलता है।"

पंडित ने सोचा, "ये भी कोई बात हुई! आम के पेड़ में आम होता है, जामुन के पेड़ में जामुन और घानी के पेड़ में भला तेल क्यों?" उन्होंने कोल्हूवाले से फिर पूछा, "घानी का कोई फल तो होता होगा?"

कोल्हूवाले ने आश्चर्य से पूछा, "क्या मतलब?"

पंडित चोटी को सहलाते हुए सोचने लगे कि शायद उनका सवाल ठीक नहीं था। लेकिन इसमें क्या झोल है ये भी वो समझ न पाए। थोड़ी देर चुप रहकर बोले, "तेल कैसे होता है?"

कोल्हूवाले ने कहा, "वहाँ सरसों के बीज रखते हैं। सरसों के बीज पर दवाब पड़ता है और उससे तेल निकलता है।" पंडित यह सुनकर बहुत खुश हुए। सिर हिलाते-डुलाते हुए, चोटी को नचाते हुए खुशी से बोले, "अच्छा, अब तो समझा, तेल पीसने का यंत्र।"

कोल्हूवाले से तेल लेकर पंडित अभी घर लौटने ही वाले थे कि उनके मन में एक और सवाल आ धमका। बैल के गले में घण्टी क्यों डाली है? उन्होंने पुकारा, "ओ कोल्हूवाले के लड़के! वो तो सब समझ गया पर ये बैल के गले में घण्टी लटकाने का क्या मतलब? क्या उससे भी तेल निकालने में कोई मदद मिलती है?" उसने कहा, "हर वक्त तो बैल पर नज़र नहीं रख सकते हैं ना इसलिए उसके गले में घण्टी बाँध के रक्खी है। जब तक घण्टी बजती रहती है तो समझ जाते हैं कि बैल चल रहा है जैसे ही बैल रुकता है कि घण्टी की आवाज़ आनी बन्द हो जाती है।

तो उसे फिर से दौड़ाने के लिए मैं आ जाता हूँ।"

पंडित ने ऐसी अद्‌भुत करामात और कहीं देखी ही नहीं थी। घर जाते-जाते वह बस इसी बात को सोचते जा रहे थे। कोल्हूवाले ने भी क्या तरकीब निकाली है। उस बेचारे बैल की तो खैर नहीं। जैसे ही वह रुकेगा कि घण्टी बजाना बन्द हो जाएगी और उसी वक्त कोल्हूवाले का लड़का उसे भगाने चला आएगा। सोचते-सोचते अचानक उन्हें सूझा, "अच्छा, अगर वो बैल एक ही जगह खड़ा रहकर सिर्फ सिर हिलाता रहे तो भी तो घण्टी बजती रहेगी। फिर कोल्हूवाले के लड़के को कैसे पता चलेगा कि बैल चल रहा है कि खड़ा हो गया है।"

पंडित जी को भारी चिन्ता हुई। अगर वह बैल ज़रा चालाकी से कामचोरी करे तो कोल्हू का तो कितना नुकसान हो जाएगा। यह सब सोचकर वे वापिस कोल्हूवाले के यहाँ जा पहुँचे। और बोले, "अरे, वो जो घण्टीवाली बात तुम कह रहे थे उसमें तो बड़ी गलती है। अगर वह बैल कामचोरी करके घण्टी बजाता रहे तो फिर क्या करोगे?"

कोल्हूवाला खिन्न होकर बोला, "कामचोरी करके घण्टी बजाना यानी?"

पंडित बोले, "मान लो वो एक जगह खड़ा होकर ही घण्टी बजाता रहे तो? घण्टी तो बजती रहेगी पर घानी चलेगी क्या? तब तुम क्या करोगे?"

कोल्हूवाला उस समय तेल नाप रहा था। उसने मुड़कर पंडित की ओर देखा और बोला, "मेरा बैल क्या शास्त्र पढ़कर पंडित बना है कि उसका इतना दिमाग होगा? ना तो वह आपकी पाठशाला में गया है, न ही उसने शास्त्र पढ़ा है और फिर बैल को इतनी अकल कहाँ होती है?"

पंडित ने सोचा, "कोल्हूवाला सच ही तो कह रहा है। उस मूर्ख बैल ने कभी शास्त्र पढ़कर देखा ही नहीं इसलिए उस मूर्ख बैल की सारी चालाकी खत्म।"

हम एक जगह बैठे नहीं हैं...

(पेज 17 का शेष भाग)

संध्या, "हाँ, इसे हम 40,000 किलोमीटर मान लेते हैं। तो पृथ्वी की सतह पर कोई भी जगह 24 घण्टे में एक चक्कर लगाकर वहीं आ जाती है यानी पृथ्वी की परिधि जितनी दूरी तय कर लेती है। पृथ्वी की सतह पर किसी भी बिन्दु की गति निकालने के लिए एक और फार्मूला लगाते हैं

$$\text{गति} = \frac{\text{दूरी}}{\text{समय}} = \frac{40,000 \text{ किलोमीटर}}{24 \text{ घण्टे}}$$

यह करीब 1667 किलोमीटर प्रति घण्टा आती है। हमारी स्कूल की बस जब खुले रास्ते पर चलती है तो उसकी गति करीब 50 किलोमीटर प्रति घण्टा होती है। इसका मतलब हमारी पृथ्वी के घूमने की गति स्कूल बस की चाल से करीब 33 गुना तेज़ है और हम सब भी उसके साथ उतनी ही तेज़ी से घूम रहे हैं।"

कौशल, "संध्या, इसमें एक गड़बड़ दिख रही है। तुमने परिधि तो पृथ्वी के बीचोंबीच वाली ली है यानी भूमध्य रेखा पर। लेकिन लोग तो सब जगह रहते हैं, भूमध्य रेखा से उत्तर या दक्षिण की ओर जाएँ तो परिधि कम होती जाएगी और उत्तर व दक्षिण ध्रुव के पास तो बहुत ही कम हो जाएगी।"

संध्या खुश होते हुए बोली, "वाह कौशल, तुमने बहुत सही पकड़ा। हमने ऊपर जो गति निकाली थी वह वाकई सिर्फ भूमध्य रेखा पर स्थित बिन्दुओं के लिए है। तुम्हें याद होगा कि एक बार हम भोपाल से साँची जा रहे थे और रास्ते में एक जगह कर्क रेखा का निशान दिखा था। कर्क रेखा पर पृथ्वी की परिधि करीब 36682 किलोमीटर होती है। इस हिसाब से अगर कर्क रेखा की किसी बिन्दु पर गति निकालें तो वह 36682 / 24 = 1528 किलोमीटर प्रति घण्टा आएगी। यह बस की गति से 30 गुना ज़्यादा है।"

कौशल, "संध्या, फिर शायद हमने गुणा-भाग में कुछ गड़बड़ करी है। अगर हम इतनी तेज़ घूम रहे हैं तो हमें पता क्यों नहीं चलता?"

"यही तो मज़े की बात है! पृथ्वी घूम रही है और उसके साथ-साथ हम सब, पृथ्वी पर बनी इमारतें, सड़कें, यहाँ तक कि उसके चारों ओर का वायुमण्डल भी पृथ्वी के साथ-साथ उसी गति से घूम रहा है। यही वजह है कि हमें इस गति का पता ही नहीं चलता।"

इतने में कौशल मुड़ा और बोला, "मैं घर जा रहा हूँ।"

संध्या, "क्यों?"

कौशल, "इस महीने की विज्ञान पत्रिका पढ़ने, और क्यों?"

गौरैया

आमोद कारखानिस

पिछले अंक में जब मैंने गौरैया का अवलोकन करने की गतिविधि तुमसे साझा की तो मन में एक डर था। मेरा अनुभव कहता है कि यह बड़े धीरज का काम है। दाने डालने के बाद गौरैया एकदम से दाना चुगने नहीं आती। क्या उसके आने तक तुम्हारा धीरज बना रह पाएगा इसका डर था।

पर तुमने मेरे डर को गलत साबित किया। मुझे इसकी खुशी है। शुक्रिया। इतने सारे बच्चों ने गौरैया को दाने डाले, अकेले या दोस्तों या परिवारवालों के साथ। गौरैया के आने-जाने को देखा। अपने देखे को कागज़ पर उतारा – शब्दों में भी, तस्वीरों में भी। कुछ ने उसे देखकर तस्वीर बनाई, तो किसी ने फोटो खींची।

दाने डालने के बाद गौरैया तुरन्त खाने नहीं आतीं। घण्टों, कभी दिनों बाद उनका यकीन बनता है। और वो आती भी हैं तो कैसे – जैसा तुम में से कइयों ने लिखा है – एकदम चौकन्नी। ज़रा-सा खटका हुआ नहीं कि वो उड़ जाती हैं। दाने चुगते हुए हमेशा इधर-उधर देखती रहती हैं। झट से दाना उठाया और उड़ चलीं।

यह खुद को बचाने का उनका अपना तरीका है। गौरैया इतना छोटा पक्षी है कि उसे हर ओर से खतरा रहता है। शान्ति से अगर वे ज़मीन पर बैठी रहें तो कोई बिल्ली, कुत्ता उन्हें हड़प सकता है। पेड़ पर बैठना भी खतरे से खाली नहीं! बाज़, चील जैसे शिकारी पक्षी इसी मौके की तलाश में रहते हैं। इसलिए छोटे पक्षी अकसर एक जगह पर ज़्यादा देर टिकते नहीं हैं।

तुम में से अधिकतर ने देखा कि गौरैया एक नहीं चार-छह के झुण्ड में आईं और एक उड़ी तो सभी उड़ गईं। यह भी बचाव की एक रणनीति है। झुण्ड में रहना सुरक्षित होता है। शिकारी किसी एक पर ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाता है। इसलिए हमला करना मुश्किल होता है। छोटे-छोटे पक्षी कई बार सैंकड़ों-हज़ारों के झुण्ड में रहते हैं। हमारे यहाँ जाड़े में लिटिल स्टिंट (little stint) नाम का एक छोटा-सा पक्षी प्रवास पे आता है। हज़ारों की तादाद में ये पानी के किनारे कीड़े खाते हैं और थोड़ी-थोड़ी देर में हवा में उड़ान भरते हैं एक साथ – बिलकुल एक साथ। वहाँ ट्राफिक जैम नहीं होता। कोई किसी से टकराता भी नहीं है। सम्भव ही नहीं कोई शिकारी किसी एक को चुनकर उसे अपना शिकार बनाए।

खैर, वापस आते हैं अपनी गौरैया की बात पर। तुम में से कई अपने आँगन या बरामदे में गौरैया को बुलाने में कामयाब रहे। कुछ के आँगन में आती ही थी पर तुमने ध्यान इसी बार दिया... शुक्रिया एक बार फिर। उम्मीद है यह सिलसिला हमेशा चलता रहेगा

तुम्हारे पत्रों से...

– रिदिमा मुँजाल, पाँचवीं, डीपीएस, लुधियाना

एक दिन एक चिड़िया ने अपने अण्डे बालकनी में दिए। हमने उन अण्डों के साथ एक रज़ाई रखी थी। चिड़िया अपने अण्डे उस रज़ाई के अन्दर डालती थी। हम हर दिन उस रज़ाई के पास पानी रखते थे। लेकिन कुछ असर नहीं होता था। उस चिड़िया ने तीन अण्डे दिए थे। एक दिन उनमें से एक अण्डा फूट गया है। दो दिन बाद बाकी के दो अण्डे भी फूट गए। हमने एक कटोरी में पानी रखा। थोड़े दिनों बाद वे अपनी माँ के साथ उड़ गए। उनकी यादें हमारे साथ रहेंगी। हम आजकल इन्तज़ार करते हैं कि कोई और चिड़िया आकर अपना घोंसला हमारी बालकनी में बनाए।

– क्रिस नासा, छठी, डीपीएस, पुणे

मेरे घर रोज़ सुबह 3-7 चिड़ियाँ आती हैं। वे पहले आसपास देखती हैं और फिर जल्दी से एक दाना उठाकर घोंसले में चली जाती हैं। फिर वापिस आकर ले जाती हैं। हमें तो घर में बना खाना मिल जाता है। पर इन पक्षियों को घर-घर जाकर दाने चुगने पड़ते हैं।

– तनुष, छठी, डीपीएस, पुणे

मेरा भाई और मैंने मिलकर गौरैया के लिए एक घर बनाया। और इसे खिड़की में लटका दिया। तुरन्त एक चिड़े ने आकर घर देखा। फिर चिड़िया को बुलाया। उन दोनों ने घर का निरीक्षण किया। फिर आपस में कुछ बात की। पहला तिनका चिड़ा लाया। चिड़िया तब घर में थी। फिर चिड़िया भी गई और उड़कर एक तिनका लाई। शाम होने तक उनका तिनकों से घर बुनना चालू था। मैंने उनके लिए चावल और मिट्टी के बर्तन में पानी रखा। उन्होंने अपनी भाषा में चिऊँ-चिऊँ करके मुझे आभार प्रकट किया और भोजन का आनन्द उठाया। मेरे भाई ने एक पुराने झाड़ू के टुकड़े करके बालकनी में रख दिए। और अन्दर आकर पर्दे के पीछे छिप गया। तुरन्त चिड़ा और चिड़िया ने वे टुकड़े उठाकर अपने घर में इस्तेमाल किए।

– ईश्वरी गोरे, छठी, रायन इ. स्कूल, मुम्बई

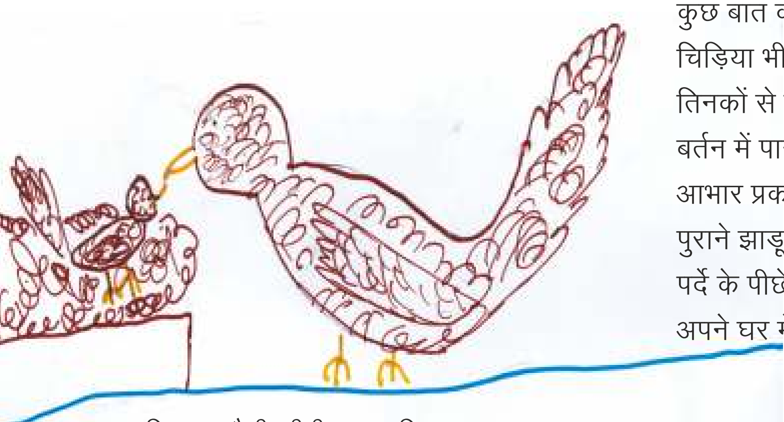

– अवियूश, चौथी डीपीएस, लुधियाना

गौरैया के दो पंख होते हैं और वो तारों पर झूलती है। इसे मैंने शहर और गाँवों में देखा है। गौरैया भूरे रंग की होती है। और घरों में रहती है। दाना चुगती है। वो चीं चीं करती है और आसमान में उड़ती है। गौरैया चोंच में दाना लाकर अपने बच्चों को खिलाती है। वो अपना घोंसला पेड़ पर बनाती है ताकि उसके घोंसले को कोई नुकसान न पहुँचाए। गौरैया अण्डे देती है जिसमें से बच्चे निकलते हैं। गौरैया पूरी दुनिया में घूमती है। आज सुबह मैं गौरैया देखने गया। पर आज तो गौरैया दिखी ही नहीं।

– नील, 8 वर्ष, कक्षा तीन, सवाईमाधोपुर, राजस्थान

मैंने गौरैया को गाँव में देखा है। वह गेहूँ का दाना ढूँढ रही थी, तो मैंने सोचा कि मैं इसके सामने गेहूँ डाल दूँ। पर जब मैं दाने डालने गई तो वो झट-से उड़ गई। उस गौरैया की गर्दन सफेद और भूरे रंग की थी। उसकी चोंच नुकीली नहीं थी। उसके अण्डे हलके भूरे रंग के होते हैं। उन पर भूरे रंग की बिन्दु रहती हैं। गौरैया कहीं भी अपना घर बना लेती है।

– निशा गुर्जर, 11 वर्ष, सवाईमाधोपुर, राजस्थान

मैं जब स्कूल से आ रही थी तब रस्ते में नीम्बू के पेड़ पर एक गौरैया दिखी। उसने उस पर घोंसला बना रखा था। उसके छोटे-छोटे दो बच्चे थे। वह उनके लिए खाना लाई थी – एक कीड़ा। उसके बच्चे भी गौरैया जैसे भूरे रंग के थे।

– मनीषा गुर्जर, 13 वर्ष, सवाईमाधोपुर, राजस्थान

गौरैया गुट में रहती है। वह चिऊ-चिऊ करती हुई यहाँ से वहाँ कूदती रहती है। गौरैया गाँव में अधिक रहती है क्योंकि वहाँ फसलों से उसे भोजन मिलता है। पहले की तुलना में इनकी संख्या कम हुई है।

– दीपक, दसवीं डीएवी स्कूल, गुड़गाँव
(यहीं से तान्या यादव, नवीं ने भी गौरैया के बारे में विस्तृत अवलोकन भेजे।)

अगली गतिविधि

अब इन्तज़ार बस खत्म समझो। लम्बी गर्मियों के बाद बारिश बस आने को है। बारिश का इन्तज़ार सिर्फ तुम्हें नहीं – पेड़, पौधों, बीजों सभी को है। बारिश के आते ही ज़मीन में सोए पड़े छोटे-मोटे पौधे जाग उठते हैं और पनपने लगते हैं। तुमने भी गौर किया होगा!

इस बार तुमको अपने आसपास की कोई सूखी पड़ी ज़मीन ढूँढनी है। यह कोई भी जगह हो सकती है – मैदान का कोई हिस्सा या घर के नज़दीक की कोई पगडण्डी के आसपास की जगह। कोई टीला या दो घरों के बीच की खाली ज़मीन भी हो सकती है। जैसे ही बारिश होती है तुम्हें देखना है कि कौन-से फूल यहाँ सबसे पहले खिले। जैसे ही कोई फूल खिला दिखे उसकी फोटो खींच लेना या उसका चित्र बना लेना। फूल का आकार, रंग, पत्तियों का आकार, संख्या भी लिख लेना। फूल किस दिन खिला यह भी ज़रूर लिखना। अपने तमाम अनुभवों के साथ फूल खिलनेवाली जगह का विवरण भी हमसे साझा करना न भूलना...। तुम्हारे अवलोकन 10 जुलाई तक हम तक पहुँच जाएँ इसकी पूरी कोशिश करना...

गौरैया

हमारा नया घर अभी दो साल पहले बना है – कस्बे के शोर-शराबे से दूर, एकान्त में। यहाँ के खुले वातावरण में कई पेड़-पौधे लगे हैं। पड़ोस में ही आम का एक बगीचा है। पापा ने घर के आगे आंवला, आम, अमरूद, बेल, सीताफल, पपीता, निम्बू, कपास, बोगनबेलिया, गुड़हल के पौधे लगाए हैं। सुबह-सुबह से ही कौवे यहाँ काँव-काँव करने लगते हैं। मम्मी रोज़ सुबह इन्हें रोटी के टुकड़े और चावल देती हैं। रोटी-रोटी कौवे खाते हैं। बचे हुए कुछ टुकड़े गौरैया और अन्य छोटे पक्षी और गिलहरी ले जाते हैं। चावल लगभग पूरा ही गौरैया खाती है। हम एक बर्तन में पानी भी रख देते हैं। यह मेरा और मम्मी का रोज़ का काम है। हमें ऐसा करना बहुत अच्छा लगता है। मैं इन्हें रोज़ देखती हूँ पर इनके खाने के तरीके, इनकी बनावट या इनके चलने-फिरने के बारे में कभी सोचा ही नहीं। एक रात मैंने चकमक में इस गतिविधि के बारे में पढ़ा तो लगा कि यह मुझे पहले क्यों नहीं सूझा! मैं बेसब्री से सुबह का इन्तज़ार करने लगी। अगले दिन रविवार था फिर भी मैं जल्दी जग गई। अभी गौरैया नहीं थीं, पर कौए काँव-काँव कर रहे थे। मैंने रोज़ की तरह रोटी के टुकड़े डाले। मैं बार-बार मम्मी से पूछती कि गौरैया क्यों नहीं आ रही? मम्मी कहतीं थोड़ी देर में आ जाएँगी। तभी झप्प से 10-12 गौरैयाओं का झुण्ड नीचे उतर आया। कौओं ने पहले तो उन्हें भगाना चाहा पर गौरैया डटी रहीं। तो कौए जल्दी-जल्दी रोटी के कई टुकड़े एक साथ चोंच में दबाकर उड़ गए। अब केवल गौरैया बचीं और दो गिलहरियाँ। गिलहरी अपने आगे के पंजों में रोटी का टुकड़ा पकड़कर कुतरने में मस्त थी। मेरा पूरा ध्यान गौरैयाओं पर था। मैं उनके काफी नज़दीक पहुँच गई। पर वे डरी नहीं। शायद रोज़ यहाँ आने और हमारे द्वारा कोई नुकसान न पहुँचाने के कारण। मैंने देखा भूरे रंग की गौरैया फुदक-फुदककर चल रही थी। उसकी चोंच काली-छोटी और आगे से नुकीली थी। वो रोटी के टुकड़ों को छोटा कर खा रही थी। चोंच का कौन-सा हिस्सा हिल रहा है, मैं देख नहीं पाई पर शायद नीचे का हिस्सा हिल रहा था। वो चावल का एक-एक दाना एक बार में उठा रही थी। कबूतर, मुर्गे का मुझे नहीं मालूम लेकिन इनका चलना और दाना चुगना कौओं से काफी अलग है।

– संस्कृति दीक्षित, नवीं, तथागत ज्ञानस्थली इंटर कॉलेज, अतर्रा, ज़िला बान्दा, उत्तर प्रदेश

– हरिल खेरपाल, दूसरी, डीपीएस लुधियाणा

तू छिपा है कहाँ...

विशाल मोदी

कुछ समय पहले मैं छोटा रण गया था। सब ने कहा, "अरे! ये किस मौसम में आ गए। शिकारी पक्षियों का मिलना इन दिनों बहुत मुश्किल होगा।" पर मैंने कहा, "अब आ ही गया हूँ तो देखते हैं... दिखें तो दिखें, न दिखें तो न सही।" पर हमारी किस्मत अच्छी रही कि हमें एक छोड़ पाँच पक्षी दिखे। बावल के पेड़ के पास की झाड़ियों में वो थे – पाँच छोटे कानवाले उल्लू।

रण के कच्छ में दिन की धूप में भयानक तेज़ी होती है। ऐसे में छोटी झाड़ियाँ उन्हें छाँव किए हुए थीं। 30 से 50 फीट की दूरी से झाड़ियों और छोटे पेड़ों के बीच उन्हें देख पाने के लिए निगाह खासी तेज़ और उस्ताद होनी ज़रूरी है। वो इसलिए कि कुदरत ने उन्हें जो जामा पहनाया है वो उनके आसपास से इतना ज़्यादा मेल खाता है कि थोड़ी दूर से भी उन्हें देख पाना मुश्किल होता है। पर इससे वो चील, बाज़ जैसे शिकारियों की पैनी नज़रों से बचे रहते हैं साथ ही अपना घोंसला बनाने के लिए उन्हें घास की आड़ भी मिल जाती है। खैर, तो हम कुछ देर के लिए उन पर से ध्यान हटाकर आसपास चक्कर काटने लगे ताकि कोई एकदम मुफीद जगह मिल जाए जहाँ से उनके रहवास में उनकी तस्वीर ले सकें। अचानक मुझे लगा कि झाड़ियों के बीच से वो भी हमारे साथ-साथ चल रहा है मानो हम दोनों एक-दूसरे पर नज़र रखे हुए एक-दूसरे का पीछा कर रहे हों...

उस वक्त मैंने उसकी तस्वीर खींच तो ली पर मन में एक बेहतर तस्वीर की आस बनी रही। और मुझे वो मौका मिला नवी मुम्बई में। पहली नज़र में तो यह सूखी घास का मैदान दिखेगा। इसमें जहाँ-तहाँ झाड़-झंखाड़ भी मिल जाएँगे। छोटे कानवाले उल्लुओं को देखने की इच्छा लिए लोग अकसर इनके रहवास के एकदम पास तक चले आते हैं। और अगर आपकी इनसे दूरी 3 फीट से भी कम रह गई है तब तो इन्हें उड़ते हुए ही देखा जा सकता है! घास के बीच ये तभी दिख पाते हैं अगर इनकी आँख खुली है और ये अपने आसपास का मुआयना कर रहे हैं। इन्हें देख पाने का सबसे सही तरीका यही है कि इनसे थोड़ी दूरी बनाकर दूरबीन से देखें – झाड़ियों के, घास के बीच। कहीं कोई हरकत नज़र आए या पीले धब्बे दिखें तो समझ लो ये वहाँ हो सकते हैं। यह तस्वीर मैंने 60-70 फीट दूर से ली है।

(सेंचुरी से साभार)

RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र. / 261 / भोपाल / 2015-17

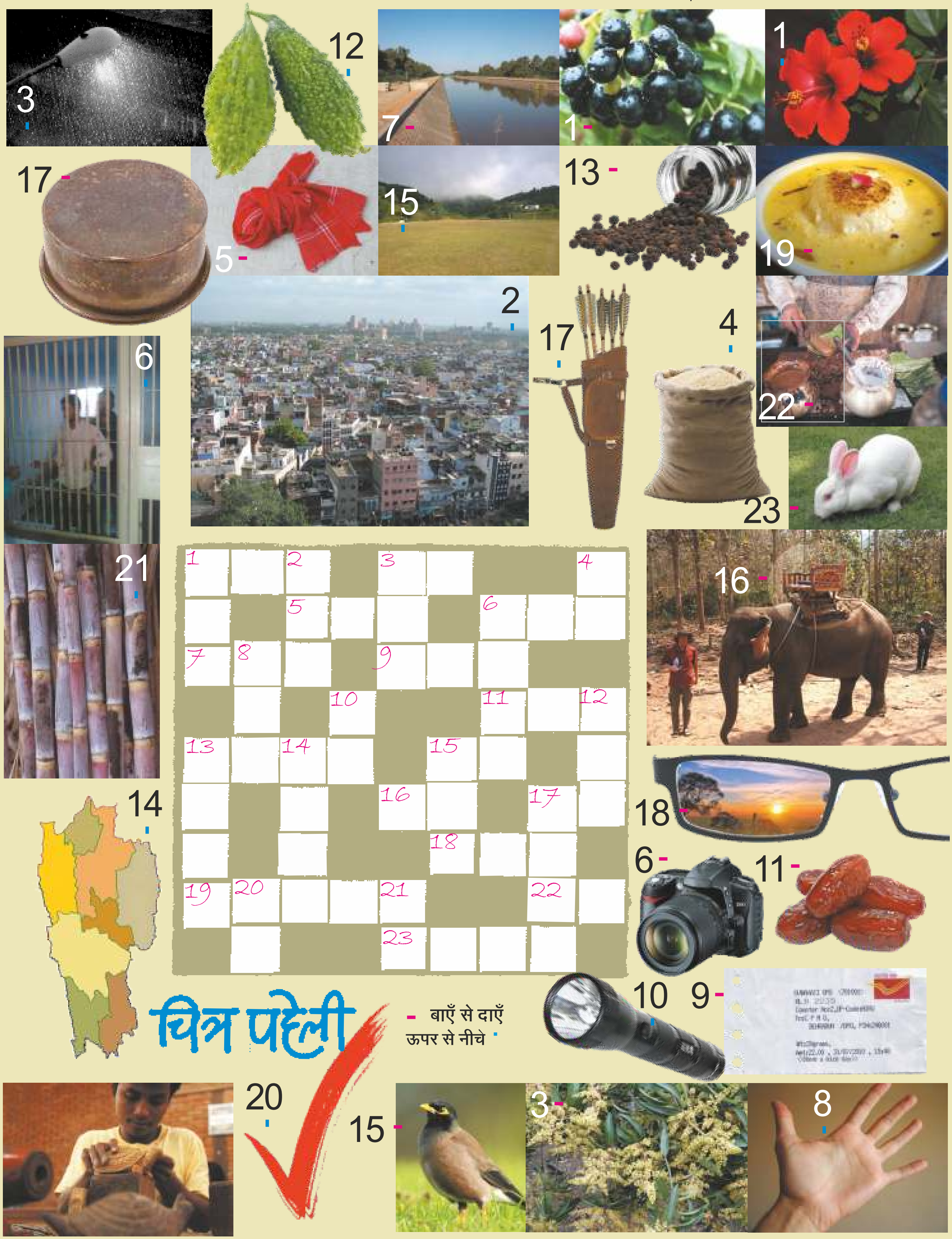

प्रकाशक एवं मुद्रक अरविन्द सरदाना द्वारा स्वामी रैक्स डी रोज़ारियो के लिए एकलव्य, ई-10, शंकर नगर, 61/2 बस स्टॉप के पास, भोपाल 462016, म.प्र. से प्रकाशित एवं आर. के. सिक्युप्रिन्ट प्रा. लि. प्लॉट नम्बर 15-बी, गोविन्दपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, गोविन्दपुरा, भोपाल - 462021 (फोन: 0755 - 2687589) से मुद्रित।
सम्पादकः सुशील शुक्ल